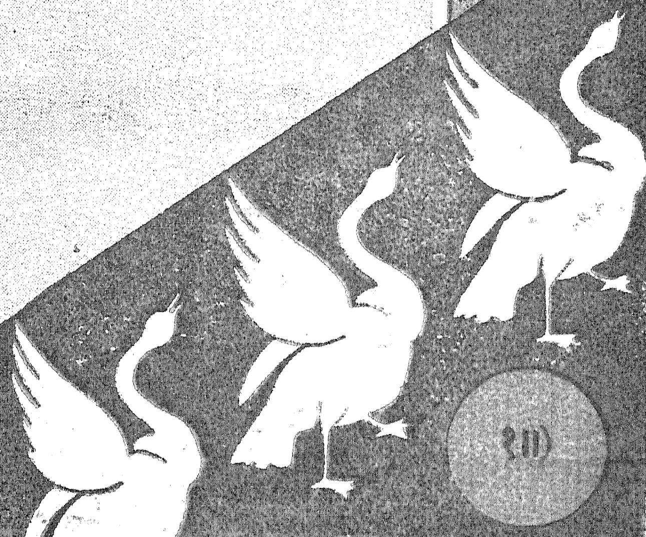
सफलता

श्री उमेशचन्द्र मिश्र



सफलता

1.

2

उमेशचन्द्र मिश्र
['सरस्वती'-सम्पादक]

श्रीराम मेहरा एण्ड को०
आगरा

१॥)

त्रिविल्वपत्रं शिवार्पणम्

(१)

देवी,

मार्च, १९४२ की 'सरस्वती' में तुम्हारा एक पत्र मैंने इस रूप में छापा था--

"आप साहित्यिक हैं, इसी नाते आपको अपना संक्षिप्त परिचय दे रही हूँ। मैं भी मनुष्य का बच्चा हूँ। मेरा जन्म इसी नगर के.......मोहल्ले में एक प्रतिष्ठित वैद्यजी के घर सन् १९२२ की पहली अक्टोबर को हुआ था। पिताजी स्त्री शिक्षा और स्वतन्त्रता के कट्टर विरोधियों में से हैं। उन्होंने मुझे पढ़ाया-लिखाया नहीं था और सन् १९३४ में १२ वर्ष की अवस्था में मेरा ब्याह कर दिया था।

"सौभाग्यवश मुझे पति देवता विद्याव्यसनी मिले हैं। विद्या की ओर मेरी रुचि देख कर उन्होंने मुझे पढ़ाना आरम्भ किया; दो-एक परीक्षाएँ भी दिलाईं जिनमें मैं प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुई। पर वह अध्ययन का शकट अब आगे नहीं चल सकता; क्योंकि मुझे घर के धन्धों से ही अवकाश नहीं मिलता। मैं दो बच्चों की माँ हूँ।

"पति देवता के पास पुस्तकों का अच्छा संग्रह है। मुझे जब कभी अवकाश मिलता है, मैं उनकी आलमारी में से निकाल-निकाल कर पुस्तकें पढ़ा करती हूँ। पूरी-की-पूरी आलमारी मैंने पढ़ डाली है। इस अध्ययन

से मेरी बहुत कुछ मानसिक उन्नति हुई है। यही नहीं, मैंने लिखना भी आरम्भ कर दिया है। मैं कहानियाँ लिखती हूँ। पर किसी समय, जब रात को मेरे बच्चे सो जाते हैं; मेरी सासजी सो जाती हैं; घर के सब काम निबटा कर, चुपचाप एकान्त में। वर्षों से मेरा यही चोरी का काम चल रहा है। मेरी लिखी कहानियों से आलमारी का एक पूरा खाना भर चुका है।

"एक दिन मेरी कहानियों पर उनकी नजर पड़ गई। पढ़ कर वे प्रसन्न तो हुए और यह भी कहा कि यदि इनको छाप दिया जाय तो अच्छा रहे; पर मुझे भविष्य में कहानी लिखने को मना कर दिया—शायद मेरे स्वास्थ्य के विचार से या परदे के नियन्त्रण के विचार से!

"यहाँ पर यह निवेदन करना भी आवश्यक समझती हूँ कि मैं जिस परिवार का अंग हूँ उसमें पर्दे की प्रथा वैसी ही है जैसी कहीं नवाबी काल में रही होगी। यह नहीं कि मैं उस प्रथा का विरोध करती हूँ। मैं तो उसकी अभ्यस्त हो गई हूँ। मैंने अपने को उसी साँचे में ढाल लिया है। मेरी सासजी चाहती हैं कि मैं उन्हीं के पदाङ्कों का पूरा अनुसरण करूँ, क्योंकि अपने समय में वे और उनकी समकालीना बधुएँ उसी मार्ग पर सफलता के साथ चल चुकी हैं जिससे परिवार को श्री-सम्पन्न होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।' मैं उन्हें सन्तुष्ट रखने का पूरा प्रयत्न कर रही हूँ। मेरी इसी लिए प्रशंसा है और मैं अपने कुटुम्ब की सर्व-श्रेष्ठ बहू इसीलिये समझी जाती हूँ, क्योंकि मैं पर्दे का बहुत ध्यान रखती हूँ। कुल की अन्य वृद्धाएँ भी मुझसे इसी लिए पूर्ण सन्तुष्ट हैं।

"पर मेरी साहित्यिक प्रेरणाएँ भी प्रबल हैं। मैं चाहती हूँ कि कोई साहित्यिक महोदय मेरी इन रचनाओं का संशोधन कर दें और मेरा पथ-प्रदर्शन करें। चाहती तो यह भी हूँ कि मेरी रचनाएँ पत्रों में स्थान पाएँ, पर मुझे ऐसा सोचने में भी संकोच होता है। कारण यह है कि एक तो मुझे निश्चय नहीं है कि मेरी रचनाएँ छपने योग्य हैं या नहीं, दूसरे मेरे

घर वाले यह पर्दा-प्रथा के विरुद्ध समझते हैं कि मेरा लेख या मेरा नाम अखबारों में छपे। इस दशा में मैं बड़ी परेशान रहती हूँ। न तो मुझ से पर्दा छोड़ते बनता है न साहित्य छोड़ते।

"मेरे पड़ोसी-परिचितों में से भी ऐसा कोई नहीं है जो मेरा पथ-प्रदर्शन कर सके। मेरे पड़ोस में एक तो कुम्हार है, जो सपरिवार कुल्हड़, ढेड़िया और खिलौने बनाया करता है; दूसरा स्वर्णकार है, जो कभी-कभी मेरे भी आभूषण बनाता है। उसका काम है प्रातः से रात गए तक चिराग़ की धुँधली रोशनी में बैठे-बैठे खुट-खुट करना और अपने घर की स्त्रियों को नए-नए डिजाइनों के आभूषण पहना कर पास-पड़ोस की औरतों से मिलने को भेजना, जिससे उसकी कला का विज्ञापन हो सके। तीसरा है एक बुड्ढा मुसलमान दफ़्तरी, जो मुहर्रम के दिनों में रेशमी बटुओं में गरी आदि भर कर मेरे बच्चों के लिये भेज दिया करता है। इन पड़ोसियों से मुझे कहानियों के प्लाट तो मिल जाते हैं, पर उनके संशोधन में सहायता नहीं मिलती। पुरुष साहित्यिक से सम्मति ले सकना मेरे लिए असम्भव है; महिलाएँ ऐसी हैं भी कम, और जो हैं वे मुझे सुलभ कैसे हो सकती हैं? क्या आप मुझे कोई उपाय बता सकेंगे कि किस प्रकार मेरे दोनों काम साथ-साथ चल सकें?"

और आज—सन् १९४५ में—मैं देख रहा हूँ कि तुम उसी घर के संकुचित घेरे में घिरी रह कर रत्न बन गई हो। तुम्हारी कल्पना की अग्नि में गल-गल कर कुम्हार, सुनार और दफ़्तरी की बातें कहानियों के अगणित सुन्दर कथानकों के रूप में ढल रही हैं, जिन्हें छापकर हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ पत्र भी गौरव का अनुभव कर रहे हैं। हिन्दी-साहित्य में तुमने अपना स्थान निर्धारित कर लिया है। अध्यवसाय का—सफलता प्राप्त करने के लिये जिसकी प्रथम आवश्यकता है, ऐसा सुन्दर और सजीव उदाहरण और कहाँ मिलेगा? अतएव यह प्रथम पत्र तुम्हारे चरणों में सादर समर्पित है!

(२)

आदरणीय मामाजी,

उन दिनों मैं नितान्त नासमझ बच्चा था, जब तुम घर छोड़ कर दिल्ली भाग गए थे। अपने अभ्युत्थान की कहानी तुमने इस प्रकार सुनाई थी—

"मैं जब दिल्ली स्टेशन पर उतरा, मेरी अण्टी में कुल ३६) थे। इतना बड़ा शहर और इतनी भारी रक़म! उतरते ही समझ गया कि भीख मांगने के सिवा और कोई चारा नहीं। उस रात छह आने पैसे उड़ गए और पेट भी नहीं भरा।

"दूसरे दिन सड़क पर मारा-मारा फिर रहा था कि एक चाट का 'खुञ्चा' देखा। समझ में आया कि इस व्यापार में तो बहुत धन नहीं चाहिये। दो आने का नमक-मिर्च मसाला; चार आने के फल, नीबू आदि और बारह आने का एक थाल? उत्साहित होकर उस खुञ्चे वाले से पूछा—'भाई शाम तक क्या कमाई हो जाती है?'

'यही, रुपए-बीस आने की।'

"मेरे निर्वाह से यह रक़म कहीं अधिक थी। उसी दिन मैंने सब सामान मोल लिया और चाट का 'खुञ्चा' तैयार किया। बहुत रात गए तक बेचता रहा। सोने से पहले हिसाब लगाया तो सचमुच अठारह आने बढ़े थे। अपनी सफलता पर मुझे कितनी प्रसन्नता हुई, कह नहीं सकता। साथ ही 'खुञ्चा' में इतना 'आलू मटर' बच रहा था कि उसे खाकर और पानी पीकर मेरा उस दिन का काम चल गया और मैं आनन्द से सो रहा।

"दूसरे दिन सवेरे उठ कर मैंने फिर 'खुञ्चा' लगाया और शाम तक परिश्रम करने पर बाईस आने बचा लिये। एक महीने में मेरे पास ५०) जमा हो गए थे।

"अब मैंने अपनी माँ को बुला लिया और मैं २) महीने का एक मकान" लेकर रहने लगा। मां मेरे खुश्चे की पूरी तैयारी कर देती थी जिससे मैं 'दोनों टेम' लगा लेता था। निर्वाह मजे में हो रहा था और पचास-साठ रुपये महीने की बचत भी।

"कुछ महीने बाद अपने एक मित्र की सलाह से मैंने मलाई की बर्फ़ की फेरी लगानी शुरू की, उसमें मुनाफ़ा कुछ अधिक था। शहर की गलियां मैं जान ही गया था। बेचने में अधिक असुविधा नहीं होती थी। धीरे-धीरे कुछ अधिक रुपया इकट्ठा हो गया और मैंने बर्फ़ बनाने की मशीन मोल ले ली। मेरे लाभ की दर बढ़ गई। फिर और भी मशीनें आती गईं।"

और आज आप दिल्ली के सबसे बड़े 'मलाई की बर्फ़' के कारखाने के अधिपति हैं। सैकड़ों बेकार आपके कारखाने से रोटी पा रहे हैं। इस अस्सी वर्ष की पकी अवस्था में भी आप बर्फ़ की पेटी बगल में दबाकर शाम को निकल जाते हैं और घर खर्च भर को पैदा कर लाते हैं। आपके ग्राहक भी ऐसे पक्के हैं कि बर्फ़ लेंगे तो आप से ही, नहीं तो नहीं। यही नहीं, आप पहुंच गए तो वे बर्फ़ अवश्य ले लेंगे। वे समझते हैं कि आप 'खुश्चे वाले' नहीं, कुछ और हैं।

उद्योग और स्वावलम्बन का पाठ आपके जीवन से अधिक अच्छा हमें कहां सीखने को मिलेगा? अतएव यह द्वितीय पत्र आपके चरणों में श्रद्धा-सहित समर्पित है।

(३)

प्यारे भारतीयजी,

उन दिनों आपकी अवस्था केवल १५ वर्ष की थी जब 'मैनपुरी षड्यंत्र केस' का अभियुक्त बनाकर आपको लोहे के सींखचों में बन्द कर दिया गया था। केस के अभियुक्त अपने भविष्यत् के विषय में चिन्तित होकर जहाँ भाँति-भाँति की दुश्चिन्ताएँ करते थे, वहाँ आप सदैव गाते और किलकारियां

भरते देखे जाते थे। खुफिया पुलिस के बंगाली इन्सपैक्टर ने आपको सबसे अधिक 'मासूम और अल्हड़' समझ कर फांसी का भय दिखाया और इंगलैंड जाकर आई० सी० एस० बन जाने का लालच। फिर भी आप विचलित नहीं हुए। गाने के सिवा एक शब्द भी किसी ने आपके मुँह से न सुन पाया।

जेल से छूटे तो आपके पास पैसा नहीं था। पर आपने पहले कम्बलों की और फिर देशी रेशम की ऐजेंसी ली और अनेक राष्ट्रसेवकों को स्वावलम्बन का व्यावहारिक पाठ पढ़ाया। इसी बीच अपने बड़े बच्चे की बीमारी से तंग आकर आपने वैद्यक शास्त्र पढ़ने का विचार किया और आप दिल्ली के 'आयुर्वेदिक एण्ड यूनानी तिब्बी कालिज' के छात्र बन गए। वहां पांच वर्ष पढ़कर आपने 'भिषगाचार्य धन्वन्तरि' की परीक्षा सम्मान के सहित उत्तीर्ण की। रेशम का व्यवसाय भी आप छुट्टियों के दिनों में बराबर करते रहे।

अदम्य साहस, अपूर्व पुरुषार्थ और पूर्ण स्वावलम्बन-द्वारा जीवन की कौन-सी सफलता है जिसे आपने प्राप्त नहीं कर लिया। अतएव श्रद्धा का यह तीसरा अन्तिम पत्र आपके चरणों में सस्नेह समर्पित है।

—उमेशचन्द्र मिश्र

विषय--सूची

आप क्या हैं ?

मेरा प्रयोजन आपके व्यवसाय से है। अर्थात् आप क्या करते हैं?

जैसी कि आशा करता हूँ, मुझे आप लोगों से भिन्न-भिन्न प्रकार के उत्तर प्राप्त होंगे। आप में से अधिकांश का उत्तर होगा कि 'हम विद्यार्थी हैं।' बहुत से उत्तर देंगे कि 'हम शिक्षक हैं।' कुछ उत्तर देंगे कि 'हम व्यापारी हैं।' इसी प्रकार और भी तरह के उत्तर मिलेंगे। बहुत से वैद्य या डाक्टर होंगे, बहुत से कवि, लेखक, समालोचक, सम्पादक या प्रकाशक होंगे। सम्भव है कि बहुत से वकील, सुधारक, वैज्ञानिक भी हों। तथा यह भी हो सकता है कि आप में से अनेक राजतन्त्र के संचालक हों।

इसके बाद मैं आप से दूसरा प्रश्न यह करूँगा कि—'क्या आप सफल हैं?'

मेरा अभिप्राय यह है कि क्या आप वह हो सके हैं, जो कि आप होना चाहते थे। और भी साफ़ शब्दों में समझ लीजिए कि क्या आप उस स्थान पर पहुंच चुके हैं, जिस पर कि आप पहुंचना चाहते थे।

मैं जानता हूँ, इस प्रश्न का उत्तर भी विभिन्न प्रकार से दिया जा सकता है व दिया जायगा। परन्तु एक मूल बात जो आप सब सज्जनों के उत्तर में पाई जायगी, वह प्रायः यह होगी कि—'नहीं, हम अभी सफल नहीं हुए हैं।' यह बहुत सम्भव है कि आप में से अधिकांश सफलता के मार्ग में होंगे। बहुत-से तो अपने उद्देश्य के निकट ही होंगे, परन्तु पूर्णतया सफल मनुष्य एक-दो ही होंगे।

यही क्यों, आप में से अधिकांश ऐसे भी होंगे जिन्हें अपनी त्रुटियों का भी ज्ञान होगा। अर्थात् जो यह भी जानते होंगे कि किन कठिनाइयों और कमियों के कारण वे अभी तक अपना अभीष्ट प्राप्त नहीं कर सके। कुछ ऐसे भी होंगे जो धैर्य के साथ अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर हो रहे होंगे, पर जिन्हें अपना मार्ग अन्धकारमय प्रतीत होता होगा, जिन्हे अपने सामने बाधाओं और विपत्तियों की ऊँची-ऊँची दीवारें दिखाई देती होंगी। जो उनके साहस और संकल्प को ढीला कर रही होंगी। कुछ ऐसे होंगे जो निर्धनता और साधनहीनता के कारण अपना मार्ग बदलने की सोच रहे होंगे और जिनकी नैया असफलता की लहरों के थपेड़े खाकर अब-तब कर रही होगी।

अगर आप सचमुच ऐसी ही परिस्थितियों में फँसे हैं तो आइये, इस पुस्तक को मेरे साथ ध्यान से पढ़ जाइये। इस पुस्तक में आपको वह मन्त्र मिलेगा जिसके बल पर आप विघ्नों को पार करते हुए, बाधाओं को चूर करते हुए और निराशा के बादलों को फाड़ते हुए अपने गन्तव्य स्थान की ओर अग्रसर हो सकेंगे, और अन्त में विजयश्री आपके गले में जयमाल पहनायगी। सफलता आपके चरणों में लोटेगी।

यह पुस्तक काल्पनिक नहीं है। इसका प्रत्येक शब्द एक मन्त्र है। संसार के चुने हुए सफल जीवनों ने अपनी सफलता के जो रहस्य संसार पर प्रकट किए हैं, उनका सार ही इसमें संकलित है। यह आपके मार्ग को आलोकित करेगी और ध्यानपूर्वक इसे एक बार पढ़कर आप स्वयं अनुभव करने लगेंगे कि आप में एक महान् परिवर्तन हो गया है। आपका मार्ग सुगम हो गया है। आप में एक महान् बल आगया है और सफलता के लौहद्वार की कुंजी आपके हाथ लग गई है।

उपयुक्त अवसर

एक कहानी है। एक राजा ने प्रश्न किया था—'किसी काम के लिए ठीक अवसर क्या है?' उसके मन्त्रियों ने उस प्रश्न का उत्तर अनेक प्रकार से दिया। किसी ने कहा कि ग्रह नक्षत्रों की गति का ठीक-ठीक हिसाब जानने वाले ज्योतिषी ही किसी काम को आरम्भ करने का ठीक अवसर बतला सकते हैं। किसी ने कहा कि वृद्ध और अनुभवी व्यक्ति का परामर्श ठीक अवसर की प्रतीति करा सकता है, इत्यादि : पर राजा को इन उत्तरों से सन्तोष नहीं हुआ। वह अपने प्रश्न का उत्तर पाने के लिए एक महात्मा के पास गया जो एक वन में कुटी बना कर रहता था। जब राजा वहाँ पहुँचा, तब साधु फावड़े से कुटी के सामने की भूमि खोद रहा था।

साधु ने राजा के अभिवादन को तो साधारण रूप से सिर झुकाकर स्वीकार कर लिया, पर उसकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। राजा मन ही मन कुढ़ गया पर चुपचाप बैठा रहा। साधु चुपचाप अपने काम में लगा रहा। बहुत देर पश्चात् जब साधु अपना काम समाप्त कर चुका तब उसने राजा की ओर देखा। राजा ने अपने आने का कारण संक्षेप में कह सुनाया। उसका प्रश्न सुनकर साधु ने केवल मुस्करा दिया और कोई उत्तर न देते हुए राजा को कुटी मे जाकर आसन पर बैठने का संकेत किया। फिर साधु कुटी में जाकर कुछ बीज लाया और उस भूमि पर बिखेर दिया। कुछ देर बाद आँधी आई और वृष्टि हुई! साधु कुटी में राजा के सामने चुपचाप बैठा रहा। जब आकाश साफ़ हो गया तब उसने राजा को घर लौट जाने के

लिए कहा। राजा ने जब अपना प्रश्न फिर दुहराया तब साधु ने उत्तर दिया कि 'मैं आपके प्रश्न का उत्तर दे चुका हूँ।'

साधु ने राजा के प्रश्न का जो उत्तर दिया था, वही उत्तर अनेक मनस्वी हमें अपने कार्यों-द्वारा समय-समय पर देते आये हैं। उन्होंने प्रमाणित कर दिया है कि अवसर कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जिसकी खोज की जाय। जो कार्य अपने सामने है, उसी में मनोयोगपूर्वक जुटे रहो और इधर-उधर मत देखो। अवसर स्वयं तुम्हारे पास आ जायगा और वह तुम्हारे छोटे-छोटे दैनिक कार्यों के बीच से ही प्रकट होगा। उसे खोजने की आवश्यकता नहीं, केवल पहचानने की आवश्यकता है।

हम में से कितने ही ऐसे होते हैं जो जीवन भर किसी बहुत अच्छे अवसर की तलाश में रहते हैं, जो उन्हें क्षण भर में ही कुछ से कुछ बना दे। सम्भव है, कुछ को ऐसे अवसर मिल जायँ, पर वस्तुतः यह जुए का दाँव ही है, जिसके लालच में हम अपने जीवन की कमाई खो डालते हैं।

अपने दैनिक कार्य को मनोयोगपूर्वक करते हुए ही हमें उपयुक्त अवसर की अचानक प्राप्ति हो सकती है। किसी आकस्मिक घटना या दैव की लीला की प्रतीक्षा में हाथ पर हाथ धरे बैठे रहना बुद्धिमत्ता नहीं है। दृढ़ निश्चय के साथ सामने का कार्य किए जाओ—उद्योग में लगे रहो। वही अवसर की सृष्टि करेगा।

चित्त को एक ही ओर—अपने काम में ही—पूर्णरूप से लगा देना और लगातार परिश्रम किए जाना, सच्चे काम करने वाले के ये दो लक्षण हैं। क्या तुम सच्चे उद्योगी हो? तो प्रतीक्षा में एक क्षण भी नष्ट न करो। जो कुछ तुम करना चाहते हो, उसे आज ही, इसी क्षण प्रारम्भ कर दो। यही उपयुक्त अवसर है। यदि तुमने इसे खो दिया तो फिर नहीं पा सकते। यह ऐसी वस्तु है जो जीवन में केवल एक बार मिल सकती है। एक विद्वान् का कथन है कि अवसर के सिर में केवल आगे की ओर

बाल होते हैं, पीछे की ओर से वह गञ्जा रहता है। तुम आगे के बालों को पकड़ कर उसे अपने वश में कर सकते हो। पर यदि तुमने उसे निकल जाने दिया तो फिर पीछे से उसे कभी नहीं पकड़ सकते।

ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जिसे जीवन में एक बार सुअवसर न मिले, पर यह कोई नहीं जानता कि वह कब और किस ओर से आयेगा। अतः यह आवश्यक है कि हम प्रत्येक कार्य को सावधानी और सतकता के साथ करते रहें, जिससे सुअवसर को पहचान सकें और उसके उचित उपयोग द्वारा जीवन में सफलता प्राप्त कर सकें।

सवसर न मिलने की शिकायत जो लोग प्रायः करते देखे जाते हैं, वे परले सिरे के आलसी और काहिल होते हैं। वे अपने उत्तरदायित्व को निभाना नहीं चाहते और परिश्रम करने में मुँह छिपाते हैं। स्कूल और पाठशाला का प्रत्येक क्षण एक अवसर है। प्रत्येक परीक्षा जीवन का एक अवसर है। प्रत्येक ऐसा कार्य जिसे हम साधारण या तुच्छ समझते हैं, एक अवसर है। वही हमें महान् बना सकता है, यदि हम उसका ठीक-ठीक उपयोग कर सकें। वे मनुष्य बुद्धिमान् नहीं हैं जो अवसर की प्रतीक्षा में हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते हैं। बुद्धिमान् वे हैं जो अवसर को अपना दास बना लेते हैं। ऐसा अवसर ढूँढने पर हजारों में शायद एकाध ही मिलेगा जो विशेष रूप से तुम्हारा सहायक सिद्ध हो सके। पर तुम्हारे सामने अवसर प्रत्येक क्षण उपस्थित है। यह दूसरी बात है कि तुम उसे पहचान न सको। यदि तुम में इच्छा है, काम करने की धुन है, सच्ची लगन है, तो अवसर तुम्हारे सामने खड़ा है।

मधुमक्खी मधु संचय करने के लिए बड़े-बड़े भाण्डारों की खोज नहीं करती। वह प्रत्येक छोटे-बड़े फूल के पास पहुँचती है और उससे जो कुछ मिलता है, उसका संचय कर लेती है। सावधान मनुष्य जीवन की प्रत्येक घटना से उपदेश ग्रहण करता है। सफल नेता प्रत्येक घटना से अनुभव

संचय करता है। जीवन की प्रत्येक घटना, हमारे सम्पर्क में आने वाला प्रत्येक मनुष्य, हमें कुछ न कुछ सिखाता है! एक दिन अंगरेजी के प्रख्यात कवि लांगफ़ेलो अपने मित्र हाथर्न और जेम्सफ़ील्ड के साथ भोजन कर रहे थे। बातों बातों में जेम्सफ़ील्ड ने कहा कि मुझे एक आर्केडियन दन्तकथा बड़ी अच्छी लगती है जो कि एक सुन्दर कहानी का प्लाट बन सकती है। वह कथा यों है कि एक आर्केडियन लड़की अपने प्रेमी से बिछुड़ जाती है। वह सारे जीवन अपने प्रेमी की खोज करती रहती है। अन्त में उसकी भेंट उस प्रेमी से एक अस्पताल में होती है और वह भी ऐसे अवसर पर, जब कि वह प्रेमी मृत्युशय्या पर पड़ा है। यह बात लांगफ़ेलो को जँच गई और वह छोटी-सी घटना 'इवेंजेलिन' नामक काव्य में संसार के सामने आ गई, जिसने लांगफ़ेलो को विश्व-साहित्य के क्षेत्र में अमर बना दिया।

यह सच है कि विलक्षण अवसर मनुष्य के पास सदा आकस्मिक रूप से आते हैं, पर उनकी पहँचान वही कर सकता है जो अपने जीवन के प्रत्येक क्षण, प्रत्येक अवसर का उपयोग सावधानी के साथ करता है, और कभी अपने दैनिक कार्यों को इस बहाने से नहीं टालता कि वे छोटे तुच्छ या महत्त्वहीन हैं, अतः उनकी ओर अधिक ध्यान देना अनावश्यक है। जो सेना प्रतिदिन क़वायद--परेड नहीं करती, क्या उससे कभी यह आशा की जा सकती है कि वह युद्ध का अवसर उपस्थित होने पर ठीक-ठीक काम कर सकेगी और विजय प्राप्त करेगी? हमारे जीवन-संग्राम के सम्बन्ध में भी यही सत्य है। यदि अपने प्रत्येक काम में हम अपनी शक्ति का पूरा उपयोग नहीं करते तो वह कुण्ठित हो जाती है और अवसर आने पर उसका सफलतापूर्वक उपयोग नहीं किया जा सकता।

आरनाल्ड का कथन है कि जिसे हम जीवन की महत्त्वपूर्ण घड़ी समझते हैं, वह वास्तव में एक ऐसा अवसर है जो हमारी पूर्व-सुरक्षित समस्त शक्ति को एकत्र कर उसके द्वारा काम निकालता है।

एक प्रसिद्ध चित्रकार ने एक चित्र बनाया था। उस चित्र का मुँह बालों से ढका था और उसके पैरों में पंख लगे थे। दर्शकों ने पूछा—'यह किसका चित्र है ?' उसने उत्तर दिया—'यह अवसर है।' इसका मुँह इसलिए छिपा है कि जब यह आता है तब लोग इसे पहचान नहीं पाते। और आकर यह तेजी से उड़ जाता है, इसीलिए इसके पैरों में पंख दिखाए गए हैं।'

सफलता का रहस्य है अवसर से लाभ उठाना। जो मनुष्य किसी कार्य को पूरा करने के लिए दृढ़-संकल्प हो जाता है, उसे उपयुक्त अवसर मिल ही जाते हैं। और यदि अवसर नहीं मिलते तो वे स्वयं उन्हें बना लेते हैं। यह सोचना भूल है कि शिल्प, विज्ञान, दर्शन और साहित्य में जिन लोगों ने अमर कीर्ति प्राप्त की है वे बड़े-बड़े विश्वविद्यालयों के स्नातक ही थे, या उन्होंने संग्रहालयों और प्रदर्शिनियों से ही वह सब ज्ञान प्राप्त किया था। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ किसी अँग्रेजी स्कूल में पढ़ने नहीं गए थे। 'लीडर' के प्रख्यात सम्पादक सर सी॰ वाई॰ चिन्तामणि की स्कूली शिक्षा बहुत थोड़ी थी। शायद वे केवल इण्टेंस पास थे। पर उनके सम्पादकीय लेखों को जिन्होंने पढ़ा है, वे कह सकते हैं कि चिन्तामणि को अँग्रेजी पर पूरा अधिकार था। प्रसिद्ध चित्रकार राजा रविवर्मा किसी चित्रशाला में बैठकर पढ़ने नहीं गए थे। उपन्यास सम्राट् शरच्चन्द्र और प्रेमचन्द ने किसी गुरु के चरणों में बैठकर कहानी लिखने की शिक्षा प्राप्त नहीं की थी। सबसे बड़ी पाठशाला 'कठिनाई' की पाठशाला है। वह मनुष्य के मस्तिष्क को उर्वर और कल्पनाप्रसू बना देती है। कठिनाइयों के साथ निरन्तर संघर्ष करते-करते मनुष्य स्वयं अवसर को पहचानने लगता है, क्योंकि उसे छोटे से छोटे अवसर से लाभ उठाने की आवश्यकता पड़ती है।

आप अवसर की प्रतीक्षा न करें, उसका निर्माण करें। जैसा कि फ़रग्यूसन ने किया था। वह एक गड़रिये का लड़का था। रात भर वह खेतों में कम्बल ओढ़े अपनी भेड़ों की रखवाली के लिए पड़ा रहता था। खुले आकाश

को प्रतिदिन देखते-देखते उसके मनमें तारों के प्रति एक कौतूहल जाग्रत हुआ। उसने एक डोरी में कुछ काँच के गुरिए पिरो लिए और उनसे तारों के नक्शे बनाने लगा। वह एक तारे को देखता और उसकी जगह एक गुरिया डोरी में अटका देता। फिर दूसरे तारे की जगह दूसरा गुरिया उसी अनुपात से जमाता। ऐसा करते-करते उसने एक सिद्धान्त स्थिर कर लिया, जिसके आधार पर आकाश के तारों की पारस्परिक दूरी नापना वैज्ञानिकों के लिए सरल हो गया। जार्ज स्टीफेन्स के पास कौन सा अवसर था जब वह कोयले की गाड़ियों के तख़्तों पर खड़िया मिट्टी के सहारे गणित का अभ्यास किया करता था। प्रसिद्ध चित्रकार विल्की दरवाजे से कागज का काम लेता था और जली हुई लकड़ी से पेन्सिल का।

साधारण से साधारण अवसर मनुष्य के लिए उन्नति के साधन जुटा सकते हैं, यदि वह उनसे लाभ उठाने को तैयार रहे। प्रोफ़ेसर ली ने बढ़ई का काम करते-करते, एक बाइबिल की पोथी और व्याकरण की एक फटी-फटाई पुस्तक के सहारे, जिसे वे कहीं कूड़ाख़ाने में से उठा लाए थे, हिब्रू भाषा सीख ली थी, अध्यवसाय, धैर्य और अवसर के सदुपयोग द्वारा ऐसा कौन कठिन कार्य है, जिसे पूरा नहीं किया जा सकता।

ह्यू मिलर की जीवनी से हम कितनी शिक्षाएँ ले सकते हैं। उनके पिता उन्हें बचपन में ही छोड़कर मर गए थे। माता ने बड़ी कठिनाई से उनका पालन-पोषण किया। कुछ दिन वे पाठशाला में भी पढ़े, पर सच पूछा जाय तो उनकी कक्षा का प्रत्येक छात्र, उनका प्रत्येक अध्यापक और संसार का वह प्रत्येक मनुष्य जो उनके संपर्क में आया, उनके लिए शिक्षक था। वे बहुत पढ़ते थे और अनेक स्रोतों से नवीन ज्ञान का संचय करते थे। वे अपने दादा का हथौड़ा लेकर निकल जाते और पत्थरों को फोड़ते तथा अभ्रक, संगमरमर और याकूत के टुकड़े इकट्ठा करते रहते। जब वे समुद्र के किनारे पहुँचते तब मल्लाहों, मछुओं और पनडुब्बों से

भाँति-भाँति के प्रश्न पूछते और उनके उत्तरों को ध्यानपूर्वक सुनते। बड़े होने पर वे एक संगतराश के यहाँ नौकर हो गये, फिर वे एक खान में नौकर हुए। वहाँ काम करते हुए उन्होंने पृथ्वी के भीतर की बनावटें देखीं, जिनमे उन्हें कौतूहल हुआ। नीचे के गहरे लाल रंग के पत्थर को और ऊपर की लाल रंग लिए हुए पीली मिट्टी को उन्होंने ध्यान से देखा। जहाँ सामान्य मनुष्यों की दृष्टि कुछ भी देखने योग्य न पाती थी वहाँ ह्यू मिलर के लिए एक पाठशाला ही खुली थी। संगतराशी का काम छोड़ देने के बाद उन्होंने एक पुस्तक लिखी जिसमें लाल बलुआ पत्थर के सम्बन्ध में ऐसी अनेक बातें बताई गई थीं, जिनके विषय में उस समय के लोगों को कुछ भी ज्ञान न था। इस पुस्तक ने उन्हें भूगर्भशास्त्रवेत्ता के रूप में प्रख्यात कर दिया। अपनी जीवनी में उन्होंने लिखा है—'मुझमें यदि कोई ऐसी वस्तु है जिसे गुण कहा जा सकता है, तो वह यह है कि मैं धैर्य और सतर्कता के साथ अपने कार्य में संलग्न रहा और जो कुछ सामने आया उस पर मनोयोगपूर्वक विचार किया और उसे समझने का प्रयत्न किया। मेरा विश्वास है कि प्रत्येक मनुष्य यह कर सकता है। अर्थात् मैंने जो कुछ किया है वह न अलौकिक है और न उसे अतिमानव ही कहा जा सकता है। प्रत्येक मनुष्य, जो इच्छा करे, मेरे जैसा काम कर सकता है और मुझसे भी आगे बढ़ सकता है।'

भूगर्भशास्त्र-विशारद जान ब्राउन की कहानी भी मिलर की-सी ही है। वे राजगीरी का काम करते थे और बड़े परिश्रमी थे। मकानों के लिए नींवें खोदते हुए पशुओं की ठठरियाँ उन्हें प्रायः मिला करती थीं। वे उनका संग्रह करने लगे। कुछ ही समय में उनका यह संग्रह इङ्गलैण्ड का सर्वोत्तम संग्रह हो गया। उन्हें खोज करते हुए हाथियों और गैंडों की कुछ ऐसी ठठरियाँ प्राप्त हुईं जो विलक्षण थीं। अपने जीवन के अन्तिम भाग में उनका ध्यान खड़िया में रहने वाले सूक्ष्मतम कीड़ों की ओर

आकर्षित हुआ। उनके सम्बन्ध में उन्होंने अनेक बातें ज्ञात कीं, जो आगे चलकर वैज्ञानिकों के लिए परम उपयोगी प्रमाणित हुईं।

ऊपर जो उदाहरण दिये गये हैं, क्या वे यह सिद्ध नहीं करते कि अवसर को कहीं जाकर खोजने की आवश्यकता नहीं है? वह सदैव तुम्हारे आस-पास रहा करता है। आवश्यकता केवल यह है कि तुम उसे पहचानो और पकड़ लो। संसार में सब जगह सब के लिए एक-सा अवसर विद्यमान है। इस वस्तु का बँटवारा प्रकृति ने स्वयं किया है और प्रत्येक को बिना पक्षपात के बराबर भाग दिया गया है। मार्कोनी, कार्नेगी, न्यूटन और एडीसन प्रारम्भ या जन्म से ही इतने महान् नहीं थे, जितने वे अब सबको दिखाई देते हैं। मार्कोनी एक तार बाँटनेवाला चपरासी मात्र था। किसी विश्वविद्यालय में उसने इञ्जीनियरिंग की शिक्षा नहीं पाई थी। दिन भर बेचारा तार बाँटा करता था। पर उसे अपने काम में आनन्द मिलता था और वह धैर्य के साथ उसकी बारीकियों को समझने का प्रयत्न करता था। उसने तार-विभाग में जो आविष्कार कर डाला है, वह शताब्दियों तक लोगों के लिए आश्चर्य और प्रशंसा का विषय बना रहेगा।

अवसर सर्वत्र समान है। तुम विद्यार्थी हो या शिक्षक, किसान हो या व्यापारी, या कुछ और। तुम्हारे लिए अवसर है। जिस काम को तुमने उठाया है, उसे दत्तचित्त होकर करो, सफलता तुम्हारे सामने खड़ी दिखाई देगी। तुम शीघ्र ही मालामाल हो जाओगे। एडीसन बेचारा क्या था? गाड़ियों पर समाचार-पत्र लाद कर एक स्थान से दूसरे स्थान में पहुँचाना उसका काम था! बण्डलों के बोरे एक दूसरे से रगड़ कर एक तरह की आवाज पैदा करते थे! हममें से कितने ही इस प्रकार की आवाजें रोज सुना करते हैं और उनकी ओर ध्यान भी नहीं देते। पर एडीसन का ध्यान उसकी ओर आकर्षित हुआ, क्योंकि वह अपने काम में मुस्तैद था। फल यह हुआ कि उसने प्रयोग करना प्रारम्भ किया। उसकी प्रयोगशाला ठेले पर लदी

साथ-साथ चला करती थी और उसकी इस सनक पर उसके साथी दिल्लगी उड़ाया करते थे। यह एडीसन के परिश्रम और सूझ-बूझ का ही परिणाम है कि आज आप घर बैठे विविध प्रकार के गीतों का मजा ले सकते हैं।

कौन नहीं देखता कि पेड़ पर से टूटा हुआ फल पृथ्वी पर ही गिरता है, आकाश की ओर नहीं जाता। पर न्यूटन के मन में इस साधारण-सी घटना ने एक हलचल मचा दी। यह उसके लिए एक बहुमूल्य अवसर था, जिसने गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त को जन्म दिया और जिसे लेकर न्यूटन संसार के इतिहास में सदा अमर रहेगा।

यह सब जान-सुन कर भी क्या आप ऐसा कह सकने का साहस कर सकते हैं कि 'क्या करें, हमें उपयुक्त अवसर नहीं मिलता। अभाग्य ने हमारे हाथ-पैर बाँध रक्खे हैं। हम बहुत कुछ करना चाहते हैं पर बाधाएँ हमें कुछ करने ही नहीं देतीं। हमें बड़ी कठिन परिस्थितियों में रहना पड़ता है। हमारे पास साधन नहीं हैं जिससे हम उन्नति कर सकें। न हमें अनुकूल क्षेत्र मिलता है और न अनुकूल अवसर।'

यदि आप अब भी ऐसा कह सकते हैं तो आपको एक प्रसिद्ध विद्वान् के ये शब्द अपनी डायरी पर लिख लेने चाहिएँ—

'भाग्य तुम्हारा मुट्ठी में है। तुम स्वयं असवर के निर्माता हो! तुम परिस्थितियों के स्वामी हो। जिस शक्ति को लेकर अनेक मनुष्य महान् बन गए हैं, वह शक्ति तुम में भी विद्यमान है। पर वह इस समय अचेतन अवस्था में है। उसे जगाने की आवश्यकता है। और उसके लिए यही दिन उपयुक्त दिन है, और यही क्षण उपयुक्त क्षण है। उठो, जागो और अपने कर्तव्य में दत्तचित्त होकर जुट जाओ। मन में विश्वास रक्खो कि जो कुछ तुम करना चाहोगे वह अवश्य कर लोगे। संसार की कोई बाधा तुम्हारा पथ नहीं रोक सकती! जहाँ उत्साह है, वहाँ राह है।

आपका सहायक

सकल भूमि गोपाल की
या में अटक कहा ?
जाके मन में अटक है
सोई अटक रहा ।

पंजाब में महाराजा रणजीतसिंह राज्य कर रहे थे। उन्हीं दिनों पश्चिम-उत्तर की ओर से लुटेरों का एक दल उतर आया। उस दल ने उत्तरी-पश्चिमी पंजाब के एक भाग में हलचल मचा दी। नागरिकों को लूटा, स्त्रियों और बच्चों को पकड़ लिया और बहुत-सा सामान लेकर लुटेरे भाग कर फिर अपने पहाड़ी इलाके में जा छिपे।

रणजीतसिंह को यह अपमान असह्य प्रतीत हुआ। बदला लेने की भावना से उन्होंने एक बड़ी सेना भेजी! पर मार्ग में अटक नदी थी जो सेना को मार्ग देने के लिए किसी तरह तैयार नहीं थी। पर सेना का वीर सेनापति भी इस बाधा से पराजय मानने को तैयार नहीं था। सेना को ठिठकते देख उसने ऊपर लिखी पंक्तियाँ कहीं और सबके देखते-देखते अपना घोड़ा अटक में डाल दिया। अन्य सेनानायकों ने भी उसका अनुसरण किया और बात की बात में सारी सेना उस गरजती हुई नदी को पार कर गई।

उत्साही सेनानायकों के ऐसे उदाहरणों से इतिहास भरा पड़ा है।

जब रामचन्द्र ने लंका पर चढ़ाई की तब उनके मार्ग में भी समुद्र एक बाधा बनकर खड़ा था, राम के सैनिक कुछ हतोत्साह हो रहे थे।

स्वयं राम प्रार्थना करके समुद्र से राह माँग रहे थे। पर परम उत्साही लक्ष्मण को उनकी यह शिथिलता सहन न हुई और उन्होंने कहा, "महाराज, दैव का क्या भरोसा? उद्योग कीजिये! दैव-दैव पुकारना तो कायरों का काम है। समुद्र पर पुल बाँधिये और इस प्रकार सेना को उतारिये।" वही हुआ, समुद्र पर पुल बाँधा गया और सेना पार उतरी।

विजयी नेपोलियन के सामने यही कठिनाई उपस्थित हुई थी। जब आल्पस पहाड़ ने उसके मार्ग को रोका था, उस समय उस वीर के मुख से जो शब्द निकले थे, वे हमारे लिए आज भी पथ-प्रदर्शक हैं। उसने कहा था कि "यदि आल्पस हमारा मार्ग रोकता है तो आल्पस नहीं रहेगा।" और सचमुच वही हुआ। उसने वह कार्य कर दिखाया जिसे देखकर लोगों को परम आश्चर्य हुआ। आल्पस को काटकर चौड़ी सुरंग बनाई गई और उसमें से होकर एक सड़क निकाली गई।

इन उदाहरणों से क्या शिक्षा मिलती है? ये महापुरुष अपने चरित्र से यह बतला गये हैं कि उत्साह हमारे काम में सबसे बड़ा सहायक है। जब तक हमारे मन में सच्चा उत्साह नहीं होता, तब तक काम में हमारा मन पूरी तरह नहीं लगता और न हम उसमें सफल ही होते हैं। मन कहीं और हाथ कहीं, इस तरह भी कोई काम होता है? ऐसे व्यक्ति भी आपने अवश्य देखे होंगे जो किसी काम को पूरे मन से नहीं करते। फल यह होता है कि जो काम एक घण्टे में होना चाहिये, उसे वे उत्साह की कमी के कारण ४—५ घण्टे में करते हैं और वह भी उलटा-सीधा। उत्साह सचमुच वह विद्युत्-शक्ति है जो हमारे शरीर की मशीन की शक्ति को कई गुना बढ़ा देती है।

एक प्रसिद्ध विद्वान् की जीवनी का अन्वेषण किया गया तो ज्ञात हुआ कि दिन के अधिकांश समय में जब कि अन्य छात्र पढ़ने का बहाना किए किताबों के सामने बैठे रहा करते थे, वह या तो सोता रहता था, या

खेला करता था। पर रात्रि के उन निर्जन घण्टों में, जब अन्य छात्र मीठी नींद की गोद में पड़कर परी-लोक की सैर करते थे, वह मोमबत्ती के धुँधले प्रकाश में पुस्तकें पढ़ा करता था। उस समय उसे जिन्होंने पढ़ते देखा था, उनका कहना है कि वह ऐसा तल्लीन हो जाता था, कि उसे यह भी पता नहीं रहता था कि उसके कमरे में कौन आया और क्या उठा ले गया। कभी-कभी मोमबत्ती तक के बुझ जाने की उसे खबर नहीं होती थी; क्योंकि उसकी आँखें अपनी पुस्तक की पंक्तियों में उलझी रहती थीं। परीक्षा का परिणाम निकलने पर सबको यह देखकर आश्चर्य होता था कि यह सोने वाला लड़का किस तरह प्रतिवर्ष बाज़ी मार ले जाता है।

हम में से प्रत्येक की यह इच्छा रहती है कि मैं कोई ऐसा काम करूँ जिससे लोग मेरी प्रशंसा करें। यह सच है कि हम में से प्रत्येक को प्रकृति ने ऐसी शक्ति दी है, पर हम में से कुछ ही ऐसे काम कर पाते हैं। शेष व्यक्ति, जिनकी संख्या अधिक होती है, ऐसे मंसूबे मन में ही लिए चले जाते हैं। कारण यह है कि सुस्ती और लापरवाही उनके प्रत्येक काम में बाधक होती है। वे संकल्प कर सकते हैं, पर उस संकल्प में दृढ़ता नहीं होती। संक्षेप में हम यह भी कह सकते हैं कि उनमें सच्चा उत्साह नहीं होता। सुस्ती और आलस्य जैसे भयानक रोगों को दूर करने की जो अमोघ औषधि अब तक संसार ने जान पाई है, वह है—उत्साह। इस औषध का सेवन यदि हम में से प्रत्येक करने लगे तो निस्सन्देह आलस्य, अकर्मण्यता और अभाग्य जैसे शब्द कोश में ही नहीं रहें।

इङ्गलैण्ड का वेस्ट मिनिस्टर गिर्जाघर प्रख्यात है। यहाँ एक समाधि है, जिस पर निम्न शब्द खुदे हुए हैं—

"इस कब्र के नीचे क्रिस्टोफर रेन सो रहा है। वह नव्वे वर्ष तक जनता की भलाई के लिए जीवित रहा। यदि तुम उसका स्मारक चाहते हो तो चारों ओर देखो। इस प्रसिद्ध गिरजे और नगर का निर्माण उसी

ने किया था।" लन्दन में उसकी कला के नमूने सर्वत्र देखे जा सकते हैं। वहाँ के गिरजाघरों में ५५ गिरजाघर उसके बनाए हुए हैं। छत्तीस विशाल सभा-भवनों का निर्माता भी वही था। सेंटपाल का विश्वप्रसिद्ध गिरजाघर उसी की रचना है, जिसे तैयार करने में उसे ३५ वर्ष लगे थे। उत्साह उसका सच्चा सहायक था। वही उसका चिर संगी था।

हमारे देश का पुराना साहित्य उत्साह की यशोगाथा मात्र है। अर्जुन, भीष्म और शिवाजी सदृश वीर कभी-कभी जीवन के कठिनतम संघर्ष में पड़ गए। ऐसा लगा मानो उसी बिन्दु पर उनके जीवन-क्षेत्र का पांसा पलट जायगा। पर उत्साह और धैर्य उनका साथी रहा। वे सब कठिनाइयों को पार कर गए और हमारे सामने सफलता का एक उज्ज्वल आदर्श स्थापित कर गए। आज हम उनके प्रशंसक हैं, उनके ऋणी हैं। भीष्म की यह अमर प्रतिज्ञा किसे स्मरण नहीं होगी? युद्ध के समय कृष्ण ने प्रतिज्ञा की थी कि वे अस्त्र ग्रहण नहीं करेंगे। पर भीष्म के अदम्य उत्साह के सामने कृष्ण की वह प्रतिज्ञा ठहर न सकी और कृष्ण को हथियार पकड़ने के लिए विवश होना पड़ा!

उत्साह सफलता का मूलमन्त्र है। यह मनुष्यों की कठिनाई को हल करता है और भविष्य का द्वार खोलता है। यह सब जानते हैं कि प्रतिभाशाली मनुष्य किसी कार्य को सुन्दरता से पूरा करता है। पर यह भी सत्य है कि उत्साही मनुष्य प्रतिभाशाली की अपेक्षा अधिक काम कर सकता है। कारण यह कि प्रतिभाशाली को जहाँ पद-पद पर बाधाएँ रोकती हैं और उनके कार्य को कठिन बना देती हैं; वहाँ उत्साही मनुष्य के सामने वे मोम बन जाती हैं। इसीलिए कहा गया है कि किसी महत्कार्य को करने के लिए योग्यता की उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी सच्चे उत्साह की। उत्साह नहीं, तो योग्य से योग्य व्यक्ति भी कुछ न कर सकेगा, और यदि उत्साह है तो साधारण मनुष्य भी कठिनाइयों के बीहड़ वन के बीच से अपना मार्ग निकाल लेगा।

शंकराचार्यजी का एक वाक्य है कि 'आशा ही जीवन है और निराशा

ही मृत्यु है ।' आशा ही उत्साह की जननी है । निरुत्साही मनुष्य संसार में किसी काम का नहीं रहता । उसे जीवन के किसी क्षेत्र में सफलता नहीं मिलती । यह हो सकता है कि वह अन्य कारणों से अपने उद्देश्य में सफल हो जाय, पर इससे उसकी सफलता में महत्त्व नहीं रहता । न उसे आत्म-सन्तोष ही होता है । ऐसे अवसर पर तो यही कहा जाता है कि भाग्य-प्रारब्ध या संयोग से उसे सफलता मिल गई । इसका श्रेय उस व्यक्ति को नहीं है । इसके विपरीत यदि उत्साही व्यक्ति अपने कार्य में असफल भी हो जाय तो उसकी असफलता का कोई महत्त्व नहीं होता । क्योंकि वह फिर भी उद्योगशील रहेगा; जिसका परिणाम यह होगा कि वह कभी न कभी सफलता अवश्य प्राप्त कर लेगा । इस बार की उसकी सफलता सचमुच अनेक गुनी महत्त्वपूर्ण होगी । उसे आत्मसन्तोष तो होगा ही । ऐसे मनुष्य हमारे सामने सचमुच एक नया आदर्श उपस्थित कर जाते हैं । चिकने खम्भे पर चढ़नेवाली और बार-बार फिसल कर गिर पड़ने वाली चींटी की कहानी तुमने बचपन में अवश्य पढ़ी होगी, जिसे देख कर एक महात्मा ने कहा था कि उसकी असफलता भी हमारे लिए स्पर्धा की वस्तु है । क्योंकि उसके उत्साह में कमी नहीं आती ।

हममें से कितने ऐसे हैं जो अपनी इच्छाओं को चटपट पूरा कर डालने के लिए तैयार हो जाते हैं, और उस दिशा में तुरन्त प्रयत्न करना प्रारम्भ कर देते हैं । अधिकांश तो ऐसे ही मिलेंगे जिनका दिमाग़ इच्छाओं का एक संग्रहालय बन जाता है । ये इच्छाएँ कभी पूरी नहीं होतीं । हो भी नहीं सकतीं । हम यह नहीं कहते कि इच्छा करना बुरा है । हम केवल यह कहते हैं कि इच्छा करके उसकी पूर्ति के लिए उद्योग न करना बुरा है । ऐसा करने वाले का मस्तिष्क रोगी हो जाता है । उत्साहहीन का जीवन भारस्वरूप होता है । अतः उचित यही है कि जो इच्छा करो, उसे चटपट पूर्ण करने के लिए सम्पूर्ण उत्साह से जुट जाओ । इससे दो लाभ होंगे । एक

तो यह कि आपका मस्तिष्क झूठी इच्छाओं का भाण्डार नहीं बनेगा; दूसरा यह है कि आप में आत्म-विश्वास जाग्रत् हो जायेगा। आपकी समस्त ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को काम करने की समुचित 'ट्रेनिंग' मिलेगी और फिर आपको किसी इच्छा के अपूर्ण रह जाने का कभी पश्चात्ताप न उठाना पड़ेगा।

युवक का उत्साह कठिनाइयों को धूल में मिला देता है। वही उत्साह यदि बुढ़ापे तक बना रहे तो आश्चर्यजनक काम करके दिखाता है। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ अस्सी वर्ष के हो जाने पर भी वैसे ही उत्साहपूर्ण थे, जैसे कि वे जीवन के प्रारम्भिक दिनों में देखे गये थे। मृत्यु के कुछ घण्टे पूर्व तक वे बराबर कविताएँ लिखते रहे थे और उनमें वही स्फूर्ति और वही उत्साह दिखाई देता था जैसा कि उनकी युवाकाल की रचनाओं में था। यही कारण है कि उनकी अन्तिम रचना में, जिसमें उन्होंने मृत्यु रूपी मल्लाह से कहा—"सामने अगाध समुद्र है। कर्णधार, नाव बढ़ाओ," उत्साह की एक उद्दाम लहर दिखाई देती है जो मृत्यु की भीषणता का उपहास-सा करती जान पड़ती है। महात्मा गान्धी के वे शब्द "अभी तो मैं नवयुवक हूँ। मेरी अवस्था ही कितनी है—केवल ६५ वर्ष की", उत्साह का सजीव चित्र उपस्थित करते हैं। हाथ में लिए कार्य को पूरा करने के लिए वे जिस उत्साह से अग्रसर होते हैं, वह हमें सदैव नया पाठ पढ़ा सकता है। वे कभी पराजय स्वीकार नहीं करते। उत्साह उनका सहायक है। जो उत्साही हैं उनके मन में पराजय की भावना नहीं आसकती पराजय तो उत्साहहीनता का लक्षण है और हतोत्साह का परिणाम है।

हिन्दी के महाकवि नाथूरामशंकर शर्मा 'शंकर' ने अपना प्रख्यात गीतिग्रन्थ बावन वर्ष की अवस्था में लिखा था। महाकवि सूरदास ने सूरसागर का निर्माण सरसठ वर्ष की अवस्था से प्रारम्भ किया था। तुलसीकृत रामायण की रचना भी गुसाईंजी ने वृद्धावस्था में प्रारम्भ की थी। यही क्यों, डाक्टर जानसन की सर्वोत्तम रचना 'कवियों का जीवनचरित'

अठत्तर वर्ष की अवस्था में लिखी गई थी। न्यूटन ने अपनी पुस्तक 'प्रिंसिपिया' के नए संक्षिप्त वर्णन दिरासी वर्ष की उम्र में लिखे थे। प्लेटो इक्यासी वर्ष की उम्र तक बराबर लिखता रहा था। बंगाल के ठाकुर परिवार के एक सम्भ्रान्त सदस्य ने अँग्रेजी का अध्ययन साठ वर्ष की अवस्था हो जाने पर प्रारम्भ किया था। उनके पढ़ने की विधि भी निराली थी, जो स्पष्ट सूचित करती थी कि उस कार्य के लिये उनके मन में कितना उत्साह था। कहते हैं कि उन्होंने एक इङ्गलिश-बँगला डिक्शनरी मोल ली और फिर उसे लेकर रटने बैठ गए। कुछ ही दिनों में उन्होंने उस डिक्शनरी के समस्त शब्दों को अर्थों के सहित कण्ठ कर लिया। फिर उन्होंने 'अरेबियन नाइट्स् इण्टरटेनमेण्ट' नामक पुस्तक उठाई और उसे सात बार पढ़ा। और इस प्रकार दो-तीन वर्ष में ही वे आँग्ल भाषा में व्युत्पन्न हो गये। वे कहा करते थे कि 'जब छियासी वर्ष की उम्र में टाम स्काट हिब्रू का अध्ययन कर सकता है तब मैं तो उससे २६ साल छोटा हूँ।' महाकवि लांगफ़ेलो, टेनिसन, व्हीटीयर आदि की उत्तमोत्तम रचनाएँ सत्तर वर्ष की उम्र के उपरान्त ही लिखी गई थीं।

फ्रांसिस पार्कमैन हारवर्ड का एक साधारण छात्र था। उसके मन में यह इच्छा हुई कि मैं उत्तरी अमेरिका के अँग्रेजों और फ्रांसीसियों का इतिहास लिखूंगा। इस इच्छा की पूर्ति में वह तन-मन-धन से तत्पर हो गया। काम सचमुच कठिन, परिश्रम और व्यय साध्य था। पर एक बार जो संकल्प कर लिया, उसे छोड़ना पार्कमैन नहीं जानता था। इतिहास की सामग्री का संकलन करते-करते उसकी आँखें खराब हो गईं, स्वास्थ्य चौपट हो गया, फिर भी उसने अपना संकल्प न छोड़ा। फल यह हुआ कि उसने जो इतिहास लिख डाला वह आज भी विद्वानों के लिए आदर और गौरव की वस्तु है।

'मेघनाद-बध' महाकाव्य के रचयिता माइकेल मधसूदनदत्त जिन

दिनों हिन्दू कालेज में पढ़ते थे, उन दिनों उनके सहपाठियों में दो ऐसे और थे जिनकी दत्त बाबू से बड़ी घनिष्ठता थी। वे थे मौलवी अब्दुल लतीफ़ और श्री भूदेव मुखोपाध्याय। एक दिन कालेज-लॉन पर सन्ध्या समय टहलते-टहलते तीनों मित्र एक स्थान पर बैठ गए और आपस में कहने लगे—"आज इस बात का निर्णय कर डालें कि हममें से कौन क्या होना चाहता है।" सामान्य दृष्टि से देखने पर इस वार्त्तालाप में कुछ विशेषता नहीं दिखाई देगी, क्योंकि हममें से अधिकांश अपनी छात्रावस्था में अपने सहपाठियों से इसी प्रकार की चर्चा प्रायः किया करते हैं, जो मनोविनोद या गपशप से अधिक महत्त्व नहीं रखती। पर उन तीनों मित्रों की बातचीत का जो कार्यरूप जनता के सामने आया, उससे ज्ञात होता है कि वह सामान्य युवकों की चर्चा की तरह 'ख़याली पुलाव' भर नहीं थी। उनमें इच्छा थी, उसकी पूर्ति के लिए उत्साह था और सच्ची लगन थी। उनमें से भूदेव बाबू मातृ-भूमि की सेवा करना चाहते थे। वे अपने जीवन-भर सचमुच इसी कार्य में लगे रहे। मौलवी साहब राजसम्मान के अभिलाषी थे। वे भूपाल राज्य के दीवान बने और उन्हें 'नवाब बहादुर' का सम्मानपूर्ण ख़िताब प्राप्त हुआ। दत्त बाबू कवि बनना चाहते थे और उनका 'मेघनाद बध' बँगला साहित्य की अमर रचना है, जिसकी प्रशंसा देशी विद्वानों ने ही नहीं, विदेशी विद्वानों ने भी मुक्त-कण्ठ से की है, और जिसके आज तक न जाने कितनी भाषाओं में अनुवाद भी हो चुके हैं।

प्रसिद्ध विचारक बक्सटन ने अपने पुत्र को एक पत्र द्वारा जो उपदेश दिया था, वह आज भी हमारा पथ-प्रदर्शन कर सकता है। उसने लिखा था—"अब तुम जीवन के चौरस्ते पर पहुँच गए हो, जहाँ तुम्हें यह निर्णय कर लेना है कि तुम किस ओर मुड़ोगे! भावी जीवन में यही निर्णय तुम्हारा सहायक होगा। पर निर्णय सावधानी से करना। यह न हो कि तुम एक दिशा की ओर मुड़ो और जब कुछ दूर निकल जाओ, तब तुम्हारे

दिल में यह आए कि इस ओर मुड़कर तुमने ठीक नहीं किया, और फिर तुम दूसरी ओर जाने का प्रयत्न करो। ऐसा करके तुम सचमुच एक बड़ी ग़लती करोगे, क्यों कि इससे न केवल समय और परिश्रम का अपव्यय होगा, तुम जीवन का अमूल्य अवसर खो बैठोगे, जो सम्भव है फिर तुम्हें कभी न मिले। पर उससे बड़ी भूल यह होगी कि तुम चौराहे पर ही सोचते खड़े रह जाओ और यह निर्णय ही न कर पाओ कि तुम्हें किधर मुड़ना चाहिये। यदि तुमने ऐसा किया तो सचमुच तुम आलसियों और अकर्मण्यों की श्रेणी में आ जाओगे और फिर कुछ न कर सकोगे। इसलिए शीघ्र निर्णय करलो, अपने गन्तव्य के सम्बन्ध में निश्चित धारणा बनालो और फिर उत्साह के साथ उस ओर अग्रसर हो जाओ। इसी प्रकार तुम अपने मार्ग की कठिनाइयों को साहस के साथ पार करते हुए निर्दिष्ट लक्ष्य को प्राप्त कर सकोगे और तुम्हें वह वस्तु प्राप्त होगी, जिसे सफलता कहते हैं।'

आओ, बक्सटन के पुत्र की भाँति, अपने जीवन के इस चौराहे पर हम भी अपनी गन्तव्य दिशा का ठीक-ठीक निर्णय करलें और फिर अदम्य इच्छाशक्ति के साथ, पूर्ण उत्साह लिए हुए अग्रसर हों और सफलता प्राप्त करें।

हम क्या करें ?

हमारे सामने यह प्रश्न खड़ा होता है कि हम सफलता प्राप्त करने के लिए क्या करें ? अर्थात् हमें क्या करना चाहिये, जिससे हम अपने जीवन में सफल हो जायें। इस प्रश्न का उत्तर ही इस अध्याय में दिया गया है।

सफलता प्राप्त करने के लिए हमारे अन्दर कुछ विशिष्ट गुणों का होना आवश्यक है। उन गुणों के विना हम जीवन में कभी सफल नहीं हो सकते। यदि अभाग्यवश वे गुण हमारे अन्दर नहीं हैं, तो सबसे प्रथम हमारा कर्त्तव्य यही हो जाता है कि उन गुणों व आदतों का हम अपने अन्दर समावेश करें—अर्थात् किसी प्रकार से उन्हें ग्रहण करें। वे गुण हैं—आत्म-सम्मान, स्वावलम्बन, समय की पाबन्दी, अध्यवसाय, सच्चरित्रता, ईमानदारी आदि। इन सब गुणों पर आगे क्रमशः बिचार करेंगे; परन्तु इन सद्‌गुणों के अतिरिक्त हमारे अन्दर और भी बहुत कुछ होना आवश्यक है। यदि हमारे अन्दर उपर्युक्त गुण हों तथा साथ में वे सब बातें भी हों; जिनका यहाँ पर वर्णन किया जा रहा है, तो निश्चय ही हमारे उद्देश्य पूर्ण होंगे और सफलता हमारे क़दम चूमेगी।

उपर्युक्त गुणों से लाभ उठाते हुए हमें सफलता प्राप्त करने के लिए और जो कुछ भी करना चाहिए, वह बहुत कुछ इस प्रकार है—

सबसे पहले हमें अपने जीवन का उद्देश्य चुनना चाहिये, जिसमें हमें सफलता प्राप्त करनी है। विना किसी उद्देश्य के हम सफलता के मार्ग पर अग्रसर नहीं हो सकते, क्योंकि यह तो सब ही जानते हैं कि प्रत्येक यात्रा का कुछ न कुछ लक्ष्य अवश्य ही होता है। इसलिए जीवन-यात्रा

का भी लक्ष्य अवश्य होना चाहिए। बिना उद्देश्य के मनुष्य की स्थिति बहुत कुछ बेपेंदी के लोटे की सी होती है—जिधर ढाल देखा, उधर ही लुढ़क पड़े—और ऐसे मनुष्य जीवनभर लुढ़कते ही रहते हैं। सफलता प्राप्त करना तो क्या, वे तो सफलता का विचार तक भी नहीं पा सकते।

जब हम अपना उद्देश्य निश्चय करलें, तब हमें अपनी सारी मानसिक व शारीरिक शक्ति उसे सफल बना देने में लगा देनी चाहिए। इससे हमें सफलता अवश्य मिलेगी!

हमें सदैव अपने विचार दिव्य रखने चाहिएँ। हमारे भावों का आशापूर्ण होना सफलता के वास्ते बहुत ही आवश्यक है। हमें निराशाजनक विचारों को अपने पास तक न फटकने देना चाहिए। हमारा निश्चय अविचल होना चाहिए। चाहे कुछ भी आपत्ति या विपद् सामने क्यों न आ खड़ी हो, हमें अपने निश्चय से नहीं हटना चाहिए। हमारा हृदय अभिलाषापूर्ण होना चाहिए, जो नित्य नई-नई अभिलाषाओं को जन्म देता रहे। बहुत से लोग समझते हैं कि हवाई क़िले बाँधना मूर्खों का काम है। परन्तु उन लोगों का ऐसा समझना बहुत ही भ्रमपूर्ण है, क्योंकि अभिलाषाएँ ही तो हमारे जीवन रूपी भवन के नक़शे (चित्र) हैं।

इसके बाद हमें चाहिए कि हम जी तोड़ परिश्रम करें। लेकिन साथ ही साथ हमें अपना मानसिक क्षेत्र संकुचित नहीं करना चाहिए। हमें सदैव यही विचार रखना चाहिए कि हम सफलता के मार्ग में हैं और शीघ्र ही सफलता प्राप्त करने वाले हैं। हमें अपने मनुष्यत्व का विकास करना चाहिए। यह विचार तो कभी मस्तिक में लाना न चाहिए कि हम असफल हो सकते हैं, या हम असफल हो जावेंगे।

इतने पर भी जो मनुष्य असफल होता है उसे समझ लेना चाहिए कि उसके भावों में कोई विकार प्रवेश कर गया है। अन्यथा क्या कारण है कि उससे कम बुद्धिमान और उससे कम परिश्रम करने वाला उसका

साथी सफलता प्राप्त कर चुका है। उसे चाहिए कि वह अपने भय और निराशाजनक विचारों को दूर हटादे और 'इस वार सफलता अवश्य ही मेरे पावों तले आयेगी' ऐसा उच्च और आशापूर्ण विचार अपने हृदय में धारण कर दृढ़तापूर्वक कार्य करने में जुट जाय। उसे चाहिये कि वह असफलता का डर बिल्कुल ही निकाल दे। और ठीक तो यह है कि वह यह तक भूल जाय कि कोश में "असफलता' नाम का कोई शब्द भी होता है। इस प्रकार मनुष्य को दृढ़ आशावादी होना चाहिये।

यदि हम अपने प्रयत्न में असफल हो जायँ तो हमें निराश होकर न बैठ जाना चाहिए, जैसा कि अधिकांश मनुष्य करते हैं। अपनी ग़लती या असावधानी से असफल होकर निराश हो जाना तथा सब दोष अपने भाग्य और ईश्वर पर लाद देना अकर्मण्य मनुष्यों का कार्य होता है। सफलता के इच्छुक मनुष्यों को तो असफल होने पर असफलता के कारणों को ढूँढ़कर आगे बढ़ने की चेष्टा करनी चाहिए। हमें धारणा बना लेनी चाहिए कि हम असफलताओं की चिन्ता न करते हुए आगे बढ़ेंगे। हमें आगे बढ़ना है—हां! क्योंकि सफलता खड़ी हुई हमारी राह देख रही है।

यह बहुत सम्भव है कि सफलता के लिए प्रयत्न करते हुए, हम से काफ़ी त्रुटियाँ व ग़लतियाँ होंगी, परन्तु तब हमारा कर्तव्य हो जावेगा कि हम मालूम करें कि हमसे क्या ग़लती हुई है। हमें उन्हें सदा ध्यान में रखना होगा, साथ ही साथ उन्हें सुधारने का भी प्रयत्न करना होगा— जिससे वैसी ग़लती फिर कभी न हो। हमारी बुद्धिमत्ता इसी में होगी कि वे ग़लतियाँ फिर न होने पावें, जो कि पहले होचुकी हैं। इस स्थल पर चन्द्रगुप्त मौर्य के जीवन की एक घटना का उल्लेख करना अनुपयुक्त न होगा।

इतिहास पढ़ने से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य ने ईसा से लगभग ३२७ वर्ष पूर्व अपनी सेना-द्वारा मगध-नरेश महापद्मनन्द के राज्य पर कई आक्रमण किये, जिनमें वह सदैव असफल रहा। यहाँ तक कि एक वार तो

उसे उसके सब साथियों के नष्ट हो जाने पर छद्म वेश में एक गाँव में एक बुढ़िया के यहाँ आश्रय लेना पड़ा। उस बुढ़िया ने भोजन के समय चन्द्रगुप्त के आगे गर्म खिचड़ी का थाल रक्खा। भूखे चन्द्रगुप्त ने उतावली में बीच थाल में से ही खाना आरम्भ कर दिया, जिससे उसका मुँह जल गया। यह देख बुढ़िया मुस्कराई और बोली—'बेटा! तुम भी चन्द्रगुप्त की ही तरह गलती कर रहे हो?'

चन्द्रगुप्त चौंक पड़ा। यह बुढ़िया अनजाने में चन्प्रगुप्त को चन्द्रगुप्त की ही गलती बता रही है, जिसके कारण चन्द्रगुप्त कई बार पराजित हुआ। उत्सुकतापूर्वक उसने पूछा—'माई! चन्द्रगुप्त ने क्या गलती की, जिसे मैं भी कर रहा हूँ?'

बुढ़िया हँस कर बोली—'बेटा, चन्द्रगुप्त बहुत वीर और साहसी है, परन्तु उसने सदैव राज्य के मध्य भाग में आक्रमण किया है, जहाँ शासन का बहुत जोर रहता है और इसी कारण वह सदा पराजित कर दिया जाता है। उसे चाहिए कि वह राज्य के केन्द्र के आस-पास आक्रमण न कर सीमा के पास के प्रान्तों में धावा बोले। वहाँ सेना भी कम रहती है और राजधानी भी दूर पड़ जाती है। इस कारण वहाँ सफलता निश्चय ही प्राप्त की जा सकती है। चन्द्रगुप्त यही गलती करता है कि वह सीमा के प्रान्तों को हस्तगत न कर एक दम राजधानी को ही प्राप्त करना चाहता है। बहुत कुछ यही गलती तुम भी कर रहे हो। तुम भी किनारे की ठण्डी खिचड़ी न खाकर बीच में से गर्म खिचड़ी खा रहे हो और व्यर्थ ही में पीड़ा पा रहे हो। अरे भाई, पहले किनारे को तो साफ़ करो, फिर मध्य भाग तो अपने आप ही समाप्त हो जायगा।'

चन्द्रगुप्त की आँखें खुल गईं। उसे अपनी गलती का पता चल गया और एक शिक्षा भी मिली। खिचड़ी की थाली एक ओर सरका कर वह उठ खड़ा हुआ! हृदय में आशा का संचार हुआ और उसने फिर सैन्य-

संगठन किया। पर अब पहले वाली गलती न दोहराई और सीमा प्रान्तों पर अधिकार पाकर धीरे-धीरे तमाम राज्य पर अधिकार कर लिया और ३२२ ई० पू० में वह भारतवर्ष का सम्राट् बन बैठा।

एक नहीं इस प्रकार के अनेक उदाहरण हमें अतीत के इतिहास के स्वर्णपृष्ठों पर दृष्टिगोचर होते हैं। ये हमें शिक्षा देते हैं। इनका मनन कर हम सफलता के मार्ग पर बहुत आसानी के साथ बढ़ सकते हैं, सफल बन सकते हैं।

सफलता प्राप्त करने के लिये हमें दूसरे मनुष्यों के अनुभवों से पूरा-पूरा लाभ उठाना चाहिये। उनके सद्गुणों को ग्रहण करना चाहिये व त्रुटियों को दूर रखना चाहिये। उनकी मूर्खताओं व गलतियों का सदैव विचार रखना चाहिये, तथा सफलता के मार्ग में उन्हें दोहराने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये।

सफलता पाने के लिये हम में दृढ़ इच्छाशक्ति होनी चाहिये। यदि हमारे अन्दर दृढ़ता का अभाव रहा तो हम सफलता के शिखर पर कभी नहीं पहुँच सकते। हमें अपने विचारों पर दृढ़ रहना चाहिये। बहुत सोच-विचार के उपरान्त किसी निष्कर्ष पर पहुँचना तथा फिर उसी पर दृढ़ रहना एक बहुत ही उत्तम गुण है।

सफलता के इच्छुक को किसी कार्य करने में घृणा या लज्जा का अनुभव नहीं करना चाहिये! चाहे कार्य छोटा हो या बड़ा हो, उसे करने में कभी संकोच नहीं करना चाहिये। कबीरदासजी को देखिये--वे जुलाहे का कार्य करते थे, और बहुत ही प्रसन्नतापूर्वक करते थे। उन्हें इस बात की ग्लानि व दुःख न था। इसी प्रकार ईश्वर के एक परम भक्त चेता चमार थे। उन्हें अपने व्यवसाय पर गर्व था। वास्तव में छोटा कार्य करने से मनुष्य छोटा नहीं हो जाता बल्कि छोटे-छोटे कार्य करने के उपरान्त ही मनुष्य बड़ा कार्य करने में समर्थ होता है। जीवन का निर्माण छोटी इकाइयों से हीहोता है।

जैसा कि आरम्भ में ही कहा जा चुका है, प्रत्येक मनुष्य को अपना उद्देश्य निश्चित करते समय अपने उपयुक्त कार्य व अपनी रुचि का ध्यान रखना चाहिए। जब तक मनुष्य को उसके योग्य कार्य नहीं मिलता, वह सफल नहीं होता। अतएव प्रत्येक मनुष्य को सफलता प्राप्त करने के लिए अपनी रुचि का अनुसरण करना चाहिये। हम महत्त्वाकांक्षाओं के विरुद्ध अधिक समय तक युद्ध नहीं कर सकते। इसमें हमें परास्त होना ही पड़ेगा। ऐसे समय हमें अपने प्रेमियों व रिश्तेदारों के कहने की पर्वा नहीं करनी चाहिये। हमें अपनी रुचि के कार्य को कभी नहीं त्यागना चाहिये, चाहे लोग कितना ही विरोध क्यों न करें। क्योंकि जिस कार्य में रुचि नहीं होती, वह पूरा, ठीक, सुन्दर व लाभप्रद नहीं हो सकता। गैलेलियो का उदाहरण लीजिये—उसके परिवार के सदस्य उसे डाक्टर बनाने पर तुले हुए थे और वह बेचारा गणितज्ञ बनकर गणित-शास्त्र को ही अपना जीवन देना चाहता था। इसका परिणाम यह हुआ कि अध्ययन-काल में गैलेलियो ने शल्यशास्त्र (Surgeory) के नीचे गणित की कापी में प्रश्न हल किये और अन्त में उसने पेण्डुलम के सिद्धान्त का आविष्कार किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि गैलेलियो की रुचि गणित की ओर ही अधिक थी और इसी कारण गैलेलियो एक गणितज्ञ कहलाया—डाक्टर नहीं।

इसी प्रकार हिटलर की माता हिटलर को चित्रकार व संगीतज्ञ बनाना चाहती थी, जबकि उसकी प्रवृत्ति मार-पीट व हुकम चलाने में अधिक थी। ऐसे अवसरों पर वही होता है, जो प्रकृति चाहती है; और इसी कारण अपने माता-पिता के सतत प्रयत्नों से भी वह चित्रकार न बनकर एक सैनिक ही बना, जहाँ उसकी दृढ़ इच्छाशक्ति, बुद्धि व महत्त्वाकांक्षा ने उसे जर्मनी का भाग्य-विधाता बना डाला।

इससे निष्कर्ष यह निकलता है कि हम अपनी रुचि को दबाकर व

उसकी हत्या करके, सफलता के मार्ग पर नहीं बढ़ सकते; इसी कारण रुचि के अनुसार कार्य करना भी सफलता तक पहुँचाने वाला एक साधन है।

बहुत से मनुष्य विना कुछ काम किए ही सफलता प्राप्त करने का स्वप्न देखा करते हैं। वे सोचते हैं कि यदि कुछ करे-धरे विना ही जीवन आराम से कट जाय तो बड़ा ही आनन्द रहे। ऐसे कामचोर और आलसी मनुष्य जीवन में कभी सफल नहीं हो सकते। इस जीवन में प्रत्येक अमीर ग़रीब छोटे-बड़े को काम करना चाहिए। काम करने से ही हम जीवन-संग्राम में विजय पा सकते हैं। देखिये न ख़ाली हाथ तो खाना भी नहीं मिलता, फिर भला सफलता की तो चर्चा भी करना व्यर्थ है।

सफलता के बहुत से इच्छुक, ऊँची जगह (Post) व अच्छी नौकरी (Job) की ही प्रतीक्षा करते हैं। छोटी जगह पर तो वे काम ही नहीं करना चाहते। शायद इसमें उनका भारी अपमान होता है। वे तो केवल बड़ी जगह पर ही काम करना पसन्द करते हैं। परन्तु बड़ी जगहें सभी को तो नहीं मिलतीं, इसलिए बहुत से सज्जन तो अपना जीवन केवल बड़ी नौकरियों की प्रतीक्षा में ही बिताते हैं। लेकिन उन्हें शायद इस बात का ख्याल नहीं है कि सफलता के पर्वत को ऊँची चोटी पर पहुँचने के लिये सदा नीची सतह से ही चढ़ना आरम्भ करना पड़ता है। लोगों को छोटी जगह से ही बढ़ना शुरू करना चाहिये, तथा परिश्रम के साथ उन्नति की ओर अग्रसर होना चाहिए।

जिस काम को हम अपने हाथ में लें, हमें चाहिये कि हम उसे पूरे उत्साह, नवीनता, निपुणता व फ़ुर्ती से करें। क्योंकि जिस काम को हाथ में लिया, उसे तो पूरा करना ही है। अब यह हम पर निर्भर है कि हम उसे प्रसन्नतापूर्वक व उत्साहपूर्वक करें या रोते हुए करें। करना तो पड़ेगा ही, क्यों न हम उसे नवीनता व निपुणता के साथ करें, जिससे कार्य में सुन्दरता व सुघराई आ जाय। तर्क हमें महामूर्खों

के लिये छोड़ देनी चाहिएँ कि 'हमें जब अमुक काम नहीं मिला, तो हम इस काम को क्यों करें?' अथवा---'हमें यदि अमुक काम मिलता, तो देखना था हम उसे कितना अच्छा करते। पर जब वह काम न मिला तो इसे क्या करें?' आदि। जो काम हाथ में हो, उसे भली भाँति पूरा करना चाहिए।

अपने काम से सम्बन्ध रखने वाली प्रत्येक बात से लाभ उठाना चाहिए। यह न सोचना चाहिए कि यह तो बहुत मामूली बात है, और बिल्कुल बेकार है। कभी कभी यह बेकार-सी बातें ही सफलता दिलवाने में बहुत अधिक सहायक हो जाती हैं।

हमें मक्खी की तरह से नहीं होना चाहिए कि अभी इधर, अभी उधर, आज यहाँ, कल वहाँ; वरन् एक जगह डट कर काम करना चाहिए। रोज इधर-उधर भटकने वाले मनुष्य कभी सफल नहीं हो सकते।

सफलता प्राप्त करने के लिए हमें केवल कल्पना पर ही कार्य नहीं करना चाहिए। हमें जो कुछ भी करना हो, उसका पहले एक चित्र तैयार कर लेना चाहिये और फिर उसी के अनुसार क्रमशः धैर्य-पूर्वक आगे बढ़ते चले जाना चाहिए। मार्ग में हमें बाधाओं का वीरतापूर्वक सामना करना चाहिए। इस प्रकार अपने आप ही सफलता का अवरुद्ध मार्ग साफ़ होता जायगा तथा हम अपने उद्देश्यों में सफलता प्राप्त करेंगे।

बहुत से मनुष्य बात-बात में दूसरों से मदद व सहायता की प्रार्थना करते हैं। ऐसे लोग जीवन में सफलता कभी नहीं प्राप्त कर सकते। जो स्वयं अपने पैरों पर खड़ा न हो सकता हो, वह जीवन में किस प्रकार सफल हो सकता है। वह तो जीवन-पथ पर सहारे के बिना नहीं चल सकता। भला सफलता के दुर्गम पथ पर आगे बढ़ने की आशा उससे किस प्रकार रक्खी जा सकती है? इस कारण सफलता प्राप्त करने के लिए हमें दूसरों का मुँह न ताकना चाहिए, वरन् अपने आप ही दृढ़ता-पूर्वक प्रयत्न करते चले जाना चाहिये।

हमें अपनी बुद्धि को व्रती और विचारशक्ति को दृढ़ बनाना चाहिये। दृढ़ विचारशक्ति वाला मनुष्य ही इस जीवन-संग्राम में सफल होता है। यदि हमारी विचारशक्ति दृढ़ नहीं है, तो हमें पहले उसे दृढ़ करने का प्रयत्न करना चाहिये। यह बहुत कठिन काम नहीं है। हम शीघ्र ही अपनी मानसिक दुर्बलता को दूर कर सकते हैं। इस कार्य में हमें अपनी बुद्धि विद्वानों का सतसंग और सदाचरण ही सहायता दे सकते हैं। इनकी सहायता लेकर हम अपने मानसिक विकारों व मानसिक दुर्बलताओं का विनाश कर सकते हैं।

यहाँ पर यह बात भी मानी जा सकती है कि इतने सब सद्‌गुण व अच्छी आदतें प्रत्येक मनुष्य में न तो पाई जाती हैं और न उत्पन्न ही की जा सकती हैं। किसी मनुष्य में कोई गुण स्वयं ही पाया जाता है, जब कि दूसरे में वह किसी भी प्रकार उत्पन्न नहीं किया जा सकता। अब प्रश्न यह होता है कि इस दशा में क्या किया जाय? इसका उत्तर यही हो सकता है कि हमें अपनी एक शक्ति से काम लेकर उसे ही तीव्र करना चाहिये। इससे हम सफलता के मार्ग पर आसानी से बढ़ सकेंगे। इस बात को अधिक स्पष्ट करने के लिए अन्धे का उदाहरण दिया जा सकता है। अन्धे की देखने की शक्ति कम हो जाती है। वह देख कुछ भी नहीं सकता, परन्तु इससे प्रकृति उसकी छू कर मस्तिष्क में अनुमान लगाने की शक्ति, उसके हाथों व पैरों की टटोलने की शक्ति व कान से सुनकर अनुमान करने की शक्ति को इतना अधिक बढ़ा देती है कि वह बिना देखे हुए भी बहुत कुछ वस्तुओं का ठीक अनुमान लगा लेता है। अर्थात् प्रकृति उसकी दूसरी शक्ति को तीव्र कर देती है। इसी प्रकार हमें भी चाहिये कि हम अपनी एक शक्ति से अधिक काम लेकर उसे ही तीव्रतम कर दें।

मि० जान रसेल के अनुसार जीवन में मनुष्य को सफलता प्राप्त करने के लिए काम करना, बेकार समय न खोना, अनुभवों से लाभ उठाना

तथा विश्वासपात्र व नम्र होना चाहिए। वे सफलता के लिए इन सब बातों को बहुत ही आवश्यक बताते हैं।

'सतर्कता से अवसर की ताक में रहना, कौशल और साहस से अवसर को प्राप्त करना, शक्ति और दृढ़ता के द्वारा अवसरों को सर्वोत्तम सफलता पर पहुँचाना—इन्हीं सद्‌गुणों द्वारा सफलता प्राप्त की जा सकती है।'

—ए० फेल्प्स

बड़े मनुष्यों के जीवन सदैव यही कहते हैं कि सफलता प्राप्त करने के लिए हमें पहले विचार और फिर निरन्तर प्रयत्न करना चाहिये। जब ज़ार (एलेक्ज़ण्डर) ने नेपोलियन से उसकी सफलता का रहस्य पूछा, तो उसने यही उत्तर दिया कि—'इसके लिए किसी कार्य में निरन्तर लगे रहना ही यथेष्ट और आवश्यक है।'

बेंजामिन फ्रेंकलिन का कथन है—'सफलता परिश्रम करने से ही प्राप्त होती है—केवल सोचने मात्र से नहीं।'

यदि हम जीवन में वास्तविक सफलता प्राप्त करना चाहें तो हमें चाहिए कि हम संसार (प्रकृति) के प्रत्येक जीव, व प्रत्येक कार्य से कुछ न कुछ शिक्षा अवश्य ग्रहण करें। हमारे जीवन में चारों ओर शिक्षाएँ भरी पड़ी हैं—हमें तो केवल उन्हें ग्रहण करना है। देखिये—धुआँ कितनी मामूली वस्तु है, परन्तु वह हमें शिक्षा देता है कि हमें सदैव ऊपर को ही उठना चाहिए। चाहे जीवन समाप्त ही क्यों न हो जाय, नीचे कभी नहीं आना चाहिए।

मेंहदी से आप अपरचित न होंगे। मेंहदी इस दुनिया वालों को यही शिक्षा देती है कि तुम्हें भी मेरी तरह दूसरों पर अपना रंग चढ़ाना चाहिए। जिस प्रकार मेंहदी प्रत्येक वस्तु पर अपना रंग जमा देती है, उसी प्रकार हमें भी दूसरों पर अपना रंग (प्रभाव) जमाना चाहिये।

जल की धारा से हमें यह शिक्षा मिलती है कि जिस प्रकार धारा,

बाधाओं की पर्वा न करते हुए, सदैव आगे को ही बढ़ती रहती है, कभी पीछे नहीं लौटती। इसी प्रकार हमें भी आपदाओं व विघ्नों का किंचित्-मात्र भी भय न करते हुए सदैव ही आगे की ओर बढ़ना चाहिए।

बेल व लताएँ वृक्षों से लिपट कर हमें शिक्षा देती हैं कि हमें भी अपने संगियों व साथियों से इतना ही प्रेम-भाव रखना चाहिये।

अचल पर्वत हमें शिक्षा देने के वास्ते ही खड़े हुए कह रहे हैं--'हमसे कुछ सीखो। हमारी तरह विपत्तियों, दुःखों व कठिनाइयों से हँसते हुए टक्कर लेना सीखो। आपत्तियों के मध्य में हमारी तरह अडिग और अचल होना सीखो।'

जीवन में इतनी शिक्षाओं के भरे रहने पर भी, आश्चर्य है, यदि हम कुछ भी शिक्षा ग्रहण न करें। हमें तो सफलता के लिए आगे बढ़ना है--कौन कहता है कि हम असफल होंगे। असफलता का भय बिलकुल झूँठ व गलत है, हमें सफल होना है! सफलता खड़ी हमारा मार्ग जोह रही है।

विपत्ति की पाठशाला

"मैं अभागा हूँ। मैं भाग्यहीन हूँ। भाग्य मेरे विपरीत है। मैं जीवन में किसी काम में सफलता नहीं पा सकता। मैं निराश हूँ। मैं जिस काम में हाथ डालता हूँ, उसी में बुरी तरह असफल होता हूँ।" जब मनुष्य गरीबी और असफलता के विचारों से हैरान हो जाता है, जब विपत्तियाँ उसका पीछा नहीं छोड़तीं, तब उसका मन प्रतिक्षण ऐसे ही भावों से भरने लगता है। वह प्रयत्न करके भी अपने को निराश-भावना से नहीं छुटा पाता। ऐसा आदमी यदि उत्तरोत्तर नीचे ही गिरता जाय तो आश्चर्य की क्या बात है! जिसके पैरों तले की ज़मीन खिसक गई है, जो आधार-हीन कटा वृक्ष बन गया है, वह गिरेगा ही।

भाग्य को दोष देने वालों की या स्वयं को अभागा समझनेवालों की संख्या छोटी नहीं है। उनसे भी बड़ी संख्या उनकी है जो 'भाग्य के भरोसे' रहते हैं। मलूकदास का एक दोहा प्रसिद्ध है—

'पंछी करें न चाकरी अजगर करें न काम।
दास मलूका यों कहै, सबके दाता राम॥

वास्तव में ऐसी ही मान्यताएँ हमारी उन्नति की सबसे बड़ी बाधक हैं। जीवन-संग्राम में हम अपने साथियों को विजय पाते बराबर देखते हैं। हम देखते हैं कि अमुक व्यक्ति हम से कम पढ़ा-लिखा होने पर भी नेता बन गया; अमुक कोई धन्धा विशेष करके मालामाल हो गया; अमुक कोई कार्यविशेष करके एक रात में ही प्रसिद्ध हो गया; अमुक देखते-देखते बड़ा वकील, बड़ा व्यापरी या बड़ा डाक्टर बन गया और हम अभी तक वहीं

खड़े हैं जहाँ पहले थे। पर वह अपने निराशापूर्ण मन से इसका कारण भी चट खोज निकालता है। वह अपने भाग्य को दोष देता है और कहता है कि भाग्य उसके अनुकूल था, मेरे प्रतिकूल है। सम्भवतः ऐसे आत्म-प्रवञ्चकों को उद्देश्य करके ही नीतिकार ने लिखा था--'लक्ष्मी उद्योगी पुरुषसिंह को ही प्राप्त होती है। यह कथन कायरों का है कि वह भाग्य से मिलती है।'

यह मत सोचो कि भाग्य कुछ गिने-चुने लोगों की बपौती है। न प्रत्येक मनुष्य जन्म के समय अपने भाग्य को साथ लाता है। देखा प्रायः यह गया है कि वे लड़के जो निर्धन माता-पिता के घर पैदा हुए थे, अपने उद्योग और पुरुषार्थ के बल पर शीघ्र धनवान् बन गये, और वे लड़के जिनका जन्म लक्षाधीशों के घर हुआ था, कुछ ही काल में दाने-दाने को मुहताज हो गये। क्या इसे भाग्य का चक्कर कहोगे या उद्योग का फल अथवा काहिली का परिणाम ?

सफल जीवन का प्रारम्भ विपत्ति से होता है, यह एक सर्वविदित सत्य है। विपत्ति जीवन की बड़ी कसौटी है। उस पर कसे जाने पर भी जो चमकता रहा, वह खरा उतरता और संसार में चमकता है। जो धूमिल पड़ गया, उसे संसार ठुकरा देता है। इसीलिये संसार में जितने महान् पुरुष हुए हैं, उन्होंने विपत्तियों का हृदय खोल कर स्वागत किया और दृढ़तापूर्वक उनका मुकाबला किया है।

अमेरिका के किसी बाग में एक दुबला-पतला बालक लकड़ी काट रहा है। वह परिश्रम और पसीने से लथपथ है। उसकी शक्ल भद्दी है। उसे स्कूल की शिक्षा नहीं मिली। उसमें कोई ऐसा गुण नहीं जिसकी ओर लोग आकर्षित हों। एक कोने में वह भी एक उपेक्षित की भाँति काल यापन कर रहा है। उसके मकान का फ़र्श कच्चा है। उसमें प्रकाश और वायु को आने-जाने के लिये खिड़कियाँ नहीं हैं। घर का सारा काम-काज उसे अपने हाथों से करना पड़ता है। फिर भी रात के समय आग के उजाले में बैठकर

वह गणित का अभ्यास करता है। उसके मन में ब्लेक स्टोन का ग्रन्थ पढ़ने की इच्छा जाग्रत होती है, जिसकी पूर्ति के लिये वह चार मील की यात्रा करता है। पुस्तक उसे मिल जाती है और उसके सौ पृष्ठ वह मार्ग में ही पढ़ जाता है।

आज इस अभागे लड़के को कौन नहीं जानता ? मानव जाति में ऐसा भी कोई होगा जिसने चार लाख गुलामों को दासता के बन्धन से मुक्ति दिलाने वाले अमेरिका के भाग्य-विधाता 'अब्राहम लिंकन' का नाम न सुना हो।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर स्कूली पढ़ाई से कितना डरते थे, यह तुम में से बहुतों को ज्ञात होगा। पाठशाला में जाते तो चुपचाप बैठे रहते। मास्टर के किसी प्रश्न का उत्तर तक न देते, पढ़ने-पढ़ाने की कौन कहे ! उनके ऐसे लक्षण देखकर एक अध्यापक ने भविष्यवाणी की थी, कि 'यह लड़का ठाकुर-परिवार में सबसे अभागा होगा। यह जीवन में कुछ न कर सकेगा, और विद्या तो इसे आ ही नहीं सकती।' वह चुप और भोंदू बालक, जिसने सचमुच किसी स्कूल में बैठकर एक अक्षर नहीं पढ़ा, समय पर 'विश्व-कवि' की उपाधि से विभूषित हुआ। उसकी एक अमूल्य रचना 'गीताञ्जलि' को उस समय की सर्वश्रेष्ठ काव्यकृति मानकर उस पर 'नोबेल पुरस्कार' दिया गया। संसार भर में उसकी रचनाएँ अपूर्व आदर के साथ पढ़ी गईं और संसार की प्रत्येक सभ्य भाषा में उनके कई-कई अनुवाद हुए, जिनकी लाखों प्रतियाँ हाथों-हाथ बिक गईं। यदि उक्त भविष्यवक्ता मास्टर साहब जीवित रहते तो अपनी भविष्यवाणी की सचाई अपनी आँखों से देख लेते !

जिस नवयुवक में प्रबल इच्छा-शक्ति है और जो अपनी कल्पनाओं को तत्काल कार्य रूप में परिणत करने के लिए उतावला है, उसे अभागा कैसे कहा जा सकता है ? वास्तव में ऐसा कोई बालक न होगा, जिसे निश्चय और विश्वास के साथ अभागा कहा जा सके। उस बालक की

कहानी तुमने सुनी ही होगी, जिसका शराबी पिता उसे स्कूल इसलिए नहीं जाने देता था कि वह ग़रीब है, अतः पढ़ाई का ख़र्च नहीं जुटा सकेगा और लड़का भूखों मर जायगा। उस बालक का नाम 'कीटो' था। कीटो ने अपनी प्रबल इच्छा प्रकट करते हुए कहा था—'पिताजी, आप यह क्यों सोचते हैं कि मैं भूखों मर जाऊँगा? मेरे पास सब कुछ है। मैं वह उपाय जानता हूँ जिससे भूख भगाई जा सकती है। हाटेनटाट नामक जंगली केवल एक प्रकार का गोंद खाकर ही जीते थे। भूख लगने पर वे अपने पेट के चारों ओर कपड़े की पट्टी बाँध लेते थे। मैं भी वही कर सकता हूँ। फिर झाड़ियों में बेर और मकोय बहुतायत से होते हैं, जिनके लिए पैसे की दरकार नहीं होती। खेतों से शलजम भी कुछ पैसे देकर ख़रीदे जा सकते हैं। क्या इतनी चीजें मेरा पेट भरने के लिए काफ़ी नहीं हैं?' वह पढ़ने गया, और कुछ दिनों बाद उन लोगों ने—जो कहा करते थे कि यह लड़का जूते गाँठने के सिवा और कुछ नहीं कर सकता—देखा कि वह बाइबिल का अधिकारी विद्वान् बन गया।

भागवत जैसे पुराण के रचयिता बोपदेव की भी कुछ ऐसी ही दशा थी। वे दरिद्र घर में पैदा हुए थे और बुद्धि के भी मन्द थे। गुरुजी बात-बात में उन पर डंडे बरसाते थे और सहपाठी उनकी दिल्लगी उड़ाया करते थे। न उन्हें पाठ याद होता था न पढ़ने में उनका मन लगता था। एक दिन वे डर के कारण पाठशाला से भाग खड़े हुए और घूमते-फिरते एक पक्के घाट पर जा बैठे, जहाँ स्त्रियाँ जल भर रहीं थीं। बोपदेव ने देखा कि घाट में जिस स्थान पर घड़े रक्खे जाते हैं, वहाँ के पत्थर में गढ़े पड़ गए हैं। साथ ही उन्हें विचार आया कि जब मिट्टी के घड़े की रगड़ से पत्थर में गढ़े पड़ सकते हैं, तब क्या प्रतिदिन के परिश्रम से मेरी बुद्धि तीव्र न हो जायगी। वे वहाँ से उठे और सीधे गुरुजी के पास पहुँचे।

उस दिन से उनका पढ़ने में मन लगने लगा, और कालान्तर में वे प्रसिद्ध विद्वान् हो गए और उनकी कीर्त्ति दूर दूर तक फैल गई।

अमेरिका के राष्ट्रपति 'विलसन' ने अपने सम्बन्ध में लिखा है—'मेरा जन्म ग़रीबी में हुआ था। मेरा पालन-पोषण अभावों के बीच हुआ। मुझे ठीक अनुभव है कि जब घर में रोटी न हो तब माता से रोटी माँगने का क्या फल होता है। मैंने दस वर्ष की उम्र में अपना घर छोड़ दिया था और फिर ग्यारह वर्ष तक उम्मीदवारी में काम करता रहा। साल भर में केवल एक महीने स्कूली शिक्षा मिल जाती थी। ग्यारह वर्ष की कड़ी मेहनत से मुझे केवल ८४ डालर मिले थे, पर उनमें से अपने सुख के लिए मैंने एक भी ख़र्च नहीं किया था। इक्कीस वर्ष की उम्र तक मैं पैसे को दाँत से पकड़ता रहा। मैं समझता हूँ कि मीलों पैदल चलते हुए, साथ वालों से काम करने की भीख माँगते हुए, कैसा अनुभव होता है। मैं महीनों जंगल में घूमा, बैल हाँके, लकड़ी काटी। सबेरे तड़के उठकर बहुत रात गए तक मैं कठिन परिश्रम किया करता था और उसकी मज़दूरी मुझे छह डालर प्रतिमास मिलती थी। प्रत्येक डालर उस समय मुझे इतना ही बड़ा प्रतीत होता था, जितना बड़ा आज चन्द्रमा प्रतीत हो रहा है।'

यहाँ एक लक्षाधीश की कहानी सुनाऊँगा। उसका परिवार जब भूखों मरने लगा था तब उसने एक छोटे-से क़सबे में २) मासिक किराये की दूकान ली और चने का दाना दलने लगा। अपने व्यवसाय में वह पूरा ईमानदार था। वह अच्छे से अच्छे चने लाता था। उसके दाने में न धूल रहती थी और न उनका वज़न बढ़ाने के लिए वह पानी का पुचारा देता था। वह चने की दिउली अलग करके उसके स्थान पर छिलके बढ़ा देना भी अनुचित समझता था। फल यह हुआ कि क़सबे भर के इक्के वाले उसी से दाना लेने लगे। उसका काम मजे में चलने लगा और उसके पास कुछ पूँजी भी एकत्र हो गई। फिर उसने एक छोटी-सी कपड़े की दूकान खोल दी। अपनी

ईमानदारी के लिए प्रसिद्धि पा ही चुका था। देखते ही देखते वह छोटी सी दूकान कपड़े की कोठी बन गई और हजारों का व्यापार करने लगी।

यहीं पर इस कहानी का दूसरा अध्याय प्रारम्भ होता है। अब नागरिकों का विश्वास-भाजन वह चौधरी व्यापारी अपना काम अपने पुत्रों को सौंपकर स्वयं एकान्त-सेवन और ईश्वराराधन करने लगा। लड़कों ने पहले तो व्यापार को खूब बढ़ाया और देश-विदेश में अपनी साख जमाकर वे हजारों लाखों के वारे-न्यारे करने लगे, पर अधिक लाभ का लोभ उनसे संवरण न हो सका और धीरे-धीरे ग्राहकों का विश्वास हटने लगा। उधर लड़कों का रहन-सहन भी ऊँचा हो गया था। फल यह हुआ कि घाटा बढ़ने लगा। कुछ ही समय में वे ऋणी हो गए और दिवाला निकाल बैठे। वैभव की इस अकस्मात् हानि ने उन्हें पैसे-पैसे का मुहताज कर दिया। चौधरी महाजन ने वह भी देखा था और यह भी देख लिया। जब उससे किसी ने पूछा कि तुम थोड़े ही दिनों में इतने धनवान् कैसे बन गए थे और तुम्हारे लड़के क्यों इतना शीघ्र ग़रीब हो गए तब उसने शान्ति और धैर्य के साथ उत्तर दिया कि 'मैंने चने की दाल से प्रारम्भ किया था, और लड़कों ने पूड़ी-मलाई से।'

'विपत्ति हमारे जीवन की कसौटी है।' यह कथन अक्षरशः सत्य है। यद्यपि हम उससे डरते हैं पर सचमुच वह हमारी परम मित्र है। जीवन के प्रारम्भ की विपत्ति को तो वरदान ही मानना चाहिए। इसी प्रकार जीवन के प्रारम्भ की सम्पत्ति को अभिशाप समझना चाहिए। प्रारम्भिक जीवन में जो पैसे-पैसे के लिए दूसरों का मुँह देखते रहते हैं, वे ही पैसे का ठीक मूल्य समझ सकते हैं। वे कभी उसका अपव्यय नहीं करते। यही नहीं, प्रारम्भिक जीवन की विपत्तियाँ उन्हें सहिष्णु, साहसी, पराक्रमी, स्वावलम्बी और आत्म-विश्वासी बना जाती हैं। वे गुण उनमें सहज रूप से निवास करने लगते हैं जिनके कारण उनका भावी जीवन दृढ़, निश्चित और आत्मविश्वासपरायण बन जाता है। वह उस कुशल सैनिक

की भाँति हो जाते हैं जिसे अनेक छोटी-मोटी लड़ाइयों का अनुभव प्राप्त रहता है; इसीलिए वह युद्ध-प्रसंग आजाने पर न हतोत्साह होता है और न चंचल, प्रत्युत उसे जीवन की एक अति सामान्य घटना समझ कर उसका सामना करने को क्षण भर में प्रस्तुत हो जाता है।

डाक्टरों का मत है कि जो मनुष्य अधिक बीमार रह लेता है, उसे संक्रामक रोगों का अधिक भय नहीं रहता और न कोई रोग उस पर आक्रमण करके उसका सहसा कुछ बिगाड़ ही पाता है। इसके विपरीत जो प्रायः स्वस्थ रहते हैं, वे किसी रोग के पंजे में फँस जाने पर चटपट मर जाते हैं। सामान्य दृष्टि से देखने पर यह बात कुछ अटपटी-सी लगती है, पर होता यही है; यह हम प्रतिदिन देखा करते हैं। इन परस्पर विपरीत परिणामों की जड़ में एक ही कारण रहता है। जो रोगी रहते हैं उनके शरीर के रक्काणु रोगों से लड़ना जानते हैं, और उनका मुक़ाबला करने की क्षमता उनमें रहती है। स्वस्थ रहने वालों की शारीरिक दशा इससे सर्वथा विपरीत होती है। रोग का विष उनके शरीरों के लिए सर्वथा नई आपत्ति के रूप में आता है, जो चटपट उन्हें नष्ट कर देता है। इसी सिद्धान्त को ध्यान में रख रोगों की चिकित्सा के लिये टीका-प्रणाली का आविष्कार हुआ है।

ठीक यही बात उनके सम्बन्ध में सत्य है, जो बचपन में विपत्ति उठा लेते हैं। उनका मन और शरीर विपत्ति की सम्भावनाओं को अच्छी तरह पहचान जाता है। अतएव वे कोई ऐसा कार्य नहीं करते जिससे उन्हें शीघ्र या सहसा किसी विपत्ति में फँस जाना पड़े। संयम और मितव्यय, मृदुभाषण और विनय ऐसे लोगों के जीवन के विशेष गुण होते हैं। इसके विपरीत उन लोगों की दशा है जिन्हें धन और भोग पैतृक विरासत के रूप में मिलते हैं। ऐंठ, अकड़, दुरभिमान, विलास, आलस्य आदि ऐसों के ही बाँट में आते हैं। फिर ये लोग यदि पाई सम्पत्ति को चटपट स्वाहा करदें और अपने लिये नरक का द्वार खोल लें तो आश्चर्य ही क्या है?

पाण्डवों को जुये में हार जाने पर देश निकाला दिया गया था। बारह वर्ष तक वे गली-गली और वन-वन की खाक छानते फिरे थे। न खाने को कुछ ठिकाना था, न ठहरने का स्थान! पर इसका परिणाम उनके अनुकूल ही हुआ। जानते हैं किस प्रकार? सुख भोगों से दूर रह कर वनों में घूमे और विपत्तियों--शीत, ग्रीष्म, वृष्टि आदि को सहने का अभ्यास किया। भूख-प्यास, मान-अपमान आदि द्वन्द्वों को जीतने का उन्हें अभ्यास हो गया। भ्रमण करते हुए वे अनेक ऋषि-मुनियों के सम्पर्क में आए जिससे उनकी ज्ञान-वृद्धि हुई। अनेक वीरों के सम्पर्क में आये, जिनसे उन्हें नये-नये अस्त्र-शस्त्रों का परिचय हुआ। जब महाभारत का युद्ध प्रारम्भ हुआ और दुर्योधन ने द्रोणाचार्य के पास जाकर कहा—"महाराज, अर्जुन तो आपका ही सिखलाया हुआ है। आप ही उसके गुरु हैं, इसलिए यह निश्चय है कि आपको धनुर्विद्या का ज्ञान अधिक है। अतः यदि आप चाहें तो उसे जीवित पकड़ सकते हैं।" इसका उत्तर द्रोणा-चार्य ने जो दिया वह हमारे लिए आज भी पथ-प्रदर्शक है। उन्होंने कहा था--"राजन, यह ठीक है कि अर्जुन मेरा शिष्य है, पर यह भी ठीक है कि वह विपत्ति की पाठशाला में पढ़ चुका है, जिससे उसे अनेक ऐसे अस्त्रों और बाणों का ज्ञान होगया है, जिनके सम्बन्ध में मैं कुछ भी नहीं जानता। मुझे तो भय है कि मैं उसका सामना भी कर सकूँगा या नहीं।"

इस कथन का अभिप्राय यही है कि प्रत्येक मनुष्य जीवन में जो शिक्षा पाता है, वह दो प्रकार की होती है। एक तो वह, जिसे वह किसी विद्यालय में गुरु के पास बैठ कर पाता है; और दूसरी वह, जिसे वह स्वयं पाता है। इस दूसरी प्रकार की शिक्षा को ही विपत्ति की पाठशाला में पाई हुई शिक्षा कहते हैं। जान हंटर ने एक स्थान पर लिखा है कि प्रत्येक मनुष्य की सच्ची शिक्षा विपत्ति के स्कूल में होती है। जो उसे सामने देख कर सिर झुका

देता है, वह पराजित हो जाता है, पर जो डटकर उसका मुक़ाबला करता है, वह विजयी होता है।

किसी नीतिज्ञ का कथन कितना सत्य है कि सेनापति की परीक्षा विजय से नहीं, पराजय से होती है। वाशिंगटन ने जितनी लड़ाइयाँ जीतीं, उनसे ज्यादा लड़ाइयों में उनकी हार हुई। पर अन्त में उनको सफलता मिली। शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी का वृत्तान्त भी इतिहासों में पढ़ा ही होगा। कहा जाता है कि पृथ्वीराज से वह पहले अनेक बार पराजित हो चुका था।

विपत्ति का फल मीठा होता है। उसके द्वारा हमको अपनी शक्तियों का पता लग सकता है और हमारे उत्साह का विकास होता है। जिस प्रकार चन्दन को काटने या घिसने पर उसमें से सुगन्ध निकलती है, उसी प्रकार यदि तुम्हारे चरित्र में यथार्थ गौरव है, तो आपत्ति-द्वारा घिसे जाने पर उसमें से भी सुगन्ध निकलेगी। अर्थात् उसके छिपे हुए गुण प्रकाश में आ जायँगे। एक विद्वान् ने कहा है कि "मुसीबत में ऐसा क्या है जिससे लोग उसकी शिकायतें करें! वह तो ठीक उसी तरह है जिस तरह किसी कुमारी का कान छिदाते समय रोना। फिर उन कानों में जड़ाऊ आभूषण पहनते समय उसे प्रसन्नता होती है। विपत्ति और गरीबी को भी ऐसा ही समझना चाहिए।" जिस मनुष्य को विपत्ति का सामना नहीं करना पड़ता उसका जीवन सुगम भले ही हो, पर उसके चरित्र का विकास नहीं हो पाता। विपत्ति गरीबी और कठिनाई का सामना यदि धैर्य के साथ किया जाय तो उससे चरित्र की उन्नति होती है और स्वावलम्बन की शिक्षा मिलती है। अभिप्राय यह कि विपत्ति हमारे लिए वह शिक्षक है जिसकी पाठशाला से उत्तीर्ण होने पर फिर संसार में हमें असफलता या निराशा का सामना नहीं करना पड़ता।

समय और उसका सदुपयोग

समय, हाँ समय ही केवल एक ऐसा पदार्थ है, जो कि हमारे हिस्से में बहुत ही थोड़ा आया है और जिसका कि हम सबसे अधिक नाश करते हैं। वास्तव में यह एक आश्चर्यजनक रहस्य है कि हम और बातों में तो बहुत ही सतर्क व सावधान रहते हैं, परन्तु समय को नष्ट करते समय हमारी सतर्कता हमसे कोसों दूर भाग जाती है। हम बहुत ही प्रसन्नतापूर्वक अपना समय स्वयं ही नष्ट करते हैं। उस समय क्या किसी को यह विचार भी आता है कि जो समय हम अब बरबाद कर रहे हैं, उसे जोड़ कर हम अपना भविष्य उज्ज्वल बना सकते हैं? शायद नहीं--उस समय हम यह नहीं सोचते कि समय का मूल्य सोने से भी अधिक है। सोना तो नष्ट हो जाने पर फिर से प्राप्त किया जा सकता है, परन्तु नष्ट हुआ समय फिर वापस नहीं मिल सकता। हमें अपना क्षण भी नहीं खोना चाहिये, क्योंकि क्षणों से ही घंटे बनते हैं, घंटों से दिन बनते हैं, दिनोंसे मास और वर्ष आदि बनते चले जाते हैं।

दुनिया इस बात को जानती है कि यह जीवन क्षण-भंगुर है और अन्त में मनुष्य को यह चोला छोड़ना पड़ता है। वह कहती भी है कि मनुष्य के जीवन का कुछ भरोसा नहीं है, क्या पता कब प्राण निकल जायँ। परन्तु आश्चर्य है कि वह तब भी समय जैसी अमूल्य चीज का मूल्य नही समझती। संसार के अधिकांश लोगों की दिनचर्या देख कर यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि लोग समय जैसे अमूल्य पदार्थ का घोर दुरुपयोग कर रहे हैं। लोगों को न तो समय का मूल्य ही मालूम है, और न ही उसके सदुपयोग का ठीक ढंग आता है। इसी कारण समय का बहुत अपव्यय हो रहा है।

कितने दुःख की बात है कि बच्चों के माँ-बाप अपने बच्चों को अन्य शिक्षाओं के साथ-साथ समय का ठीक उपयोग करने की शिक्षा नहीं देते। वे उन्हें पाठशाला भेजकर, गणित, इतिहास, भूगोल आदि की शिक्षा दिलवाना बहुत ही आवश्यक समझते हैं, पर बिरले ही अभिभावक अपनी संतान को यह शिक्षा देते होंगे कि समय को नष्ट होने से किस प्रकार बचाना चाहिए। यदि अभिभावक यह समझ जायँ कि समय के उपयोग की शिक्षा उनकी संतान के लिये कितनी अधिक आवश्यक है, तो निश्चय ही भारत के उन भावी वीरों के जीवन की सफलता की नींव पड़ जाय। परन्तु इसके विपरीत वे तो स्वयं ही उन्हें समय के दुरुपयोग की शिक्षा देते हैं। बालक प्रायः अपने माता-पिता को कहते हुए सुनते हैं—"ओ हो! आज तो हमें यह काम करना था, अथवा आज तो हमें वहाँ जाना था, उससे मिलना था, पर हमें तो इसका कुछ भी ध्यान नहीं रहा। खैर जी, कल कर लेंगे—क्या हर्ज है।" यह कहते हुए वे यह नहीं सोचते कि कल तो वे उस कार्य को करेंगे या न करेंगे, परन्तु आज उस कार्य को न कर, उन्होंने अपना समय व्यर्थ ही खोया है। जिस समय में वे इस कार्य को करते, उस समय में उन्होंने आज हँसी-दिल्लगी, सैर-तमाशे या व्यर्थ की बातचीत ही की है तथा अपने अमूल्य समय की हत्या की है! यदि वे अधिक ही दृढ़प्रतिज्ञ निकले और दूसरे दिन उन्होंने वह कार्य कर ही डाला, तो क्या हुआ! एक प्रकार से उनका उस दिन का समय भी नष्ट हुआ।

इन बातों का बच्चों के जीवन पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। वे अपने जीवन में नियमितता का गुण कभी उत्पन्न नहीं कर पाते, न ही वे समय का मूल्य आँक सकते हैं।

अपने जीवन का जितना समय हम काम में लायेंगे, उसी के अनुसार हमें सफलता मिलेगी। यदि हमने कम समय काम किया होगा तो हमें सफलता कम मात्रा में मिलेगी, और अधिक समय किया होगा तो वह

अधिक मात्रा में मिलेगी। देखा जाय तो जीवन को सफल बनाने के लिए सब से बड़ा साधन हमारे वे ही क्षण हैं, जो हम व्यर्थ की बातचीत व सैर-सपाटों में नष्ट कर दिया करते हैं।

समय कितना मूल्यवान है, यह बात नीचे की घटना से सिद्ध होती है—

पुस्तक विक्रेता की दूकान पर एक मनुष्य खड़ा हुआ एक पुस्तक देख रहा था। उसने दूकानदार से उस पुस्तक का मूल्य पूछा। दूकानदार ने बतलाया—"एक रुपया"।

ग्राहक ने पुस्तक लौट-पलट कर देखी और कहा—"दाम कुछ कम नहीं हो सकते ?"

दूकानदार ने कहा—"अब इसके दाम डेढ़ रुपया हो गये हैं।"

ग्राहक को बहुत आश्चर्य हुआ, बोला—"इतनी देर में ही दाम एक रुपये से डेढ़ रुपये कैसे हो गए ?"

दूकानदार ने कहा—"इस समय पुस्तक का दाम दो रुपया हो चुका है, तथा ज्यों-ज्यों आप देर करेंगे और मेरा समय नष्ट करेंगे, त्यों-त्यों पुस्तक का मूल्य बढ़ता चला जायगा; क्यों कि समय बहुत ही मूल्यवान् वस्तु है, और उसे इस प्रकार व्यर्थ में नष्ट कर देने का हमें कुछ भी अधिकार नहीं है।"

ग्राहक ने चुपचाप दो रुपये जेब से निकाले, पुस्तक उठाई और वह दूकान के बाहर निकल आया। आज उसे समय के मूल्य का तनक-सा आभास हो गया था।

जब मनुष्य समय की उपयोगिता समझने लग जाता है, तब उसमें योग्यता का गुण स्वयं आ जाता है। जिस समय को हम विश्राम अथवा मनोरंजन की घड़ी समझ कर व्यर्थ की बातों में नष्ट कर देते हैं, उसी समय में दृढ़ प्रयत्न करके हम सफलता प्राप्त कर सकते हैं। हम लोगों को शेखी बघारने व अपनी डींगे हांकने के लिए बहुत समय मिल जाता

है, परन्तु काम करने के लिए समय नहीं मिलता, नहीं तो हम कुछ न कुछ तो अवश्य ही कर दिखाते।

संसार में सफल वे ही मनुष्य हो सके हैं, जिन्होंने अपने समय का पूरा-पूरा उपयोग किया और कभी अपना एक क्षण भी व्यर्थ में नहीं गँवाया। स्वर्गीय लोकमान्य तिलक और महात्मा गांधी जैसे महात्माओं की सफलता का भी यही रहस्य है। जिस समय को हम इधर-उधर की बातों में ही व्यतीत कर देते हैं, उसी समय में उन्होंने महान् कार्य किये हैं, और इसी कारण आज वे इतनी श्रद्धा की दृष्टि से देखे जाते हैं। इङ्गलैण्ड का प्रसिद्ध वक्ता एडमण्ड बर्क अपने भाषण प्रायः उसी समय तैयार किया करता था जब कि उसके भाई मनोरंजन के लिए क्लबों व होटलों में अपना समय व्यतीत करते थे।

कोई समझदार मनुष्य यह नहीं कहेगा कि उसे फुरसत मिलती है। देखा जाय तो फुरसत केवल निकम्मे व कामचोर मनुष्यों को ही मिलती है। परन्तु फुरसत में भी समय का उपयोग भली भाँति किया जा सकता है। दिन भर में २४ घण्टे होते हैं, यदि उसमें एक घण्टा भी काम किया जाय, तो वर्ष भर में ३६५ घण्टे का हिसाब लगता है। जिस मनुष्य ने वर्ष में ३६५ घण्टे कोई विशेष कार्य किया है, वह मनुष्य उस कार्य में किस प्रकार असफल हो सकता है?

ईश्वर ने सब मनुष्यों को बराबर समय दिया है। प्रतिदिन सब मनुष्यों को २४ घण्टे मिलते हैं, तथा उन घण्टों को किसी प्रकार व्यतीत करने की पूर्ण स्वतन्त्रता मिलती है। तब क्या कारण है कि बहुत से मनुष्य अत्यधिक उन्नति कर जाते हैं, बहुत से मनुष्यों की अवनति हो जाती है और बहुत से स्थित रहते हैं। इसका कारण उनका भाग्य नहीं, प्रत्युत उनके समय के उपयोग करने का ढंग ही है। जो मनुष्य समय का ठीक प्रकार से उपयोग करते हैं, वे सफलता प्राप्त कर लेते हैं; जो समय का

दुरुपयोग करते हैं, वे अपने स्थान से और भी नीचे गिर जाते हैं; तथा जो न तो समय का सदुपयोग ही करते हैं और न दुरुपयोग ही, वे मध्य के मध्य में ही रह जाते हैं। उन्हें भी एक दृष्टि से हम असफल ही कह सकते हैं।

विद्वान् लोग अपने आवश्यक कार्यों को उसी समय समाप्त कर देते हैं। वे उन्हें दूसरे दिन के लिए नहीं टालते। क्योंकि जो काम टाल दिया जाता है वह कभी पूरा नहीं होता। जिन लोगों को अपने काम दूसरे दिन के लिए टाल देने की आदत पड़ जाती है, उनके तमाम काम अधूरे पड़े रहते हैं। इससे कभी-कभी उन्हें बहुत हानि व अपमान सहना पड़ता है। उनका एक भी काम पूरा नहीं हो पाता; क्योंकि वह दूसरे दिन भी पूरा नहीं हो सकता। जो कठिनाई पहले दिन सामने रहती है, वही दूसरे दिन भी सामने रहती है। परिणाम यही होता है कि वे आगे नहीं बढ़ पाते, अतीत में ही उलझे रहते हैं।

कहा गया है कि—

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।
पल में परलय होयगी, बहुरि करेगो कब॥

अर्थात् हमें कल का काम आज करना चाहिये, और आज का काम अब—यानी अभी निपटा लेना चाहिए, क्योंकि इस जीवन का कुछ भी भरोसा नहीं है। परन्तु खेद है कि बहुत से लोगों ने इसका उलटा कथन ही अपने जीवन का मूलमन्त्र बना रक्खा है। वे लोग बड़ी प्रसन्नतापूर्वक कहते हैं—

आज करे सो काल कर, काल करे सो परसों।
क्या करेगा अभी से करके, जीना तो है बरसों॥

ऐसे लोगों की बुद्धि पर जितना ही खेद प्रकट किया जाय उतना ही थोड़ा है। हमें चाहिए कि ऐसी बातों की ओर किंचिन्मात्र भी ध्यान न दें। हम देखते हैं कि आज का काम जितनी अच्छी तरह आज ही किया जा सकता है, उतनी अच्छी तरह कल नहीं किया जा सकता। पत्रों का उत्तर

जितनी सुन्दरतापूर्वक उसी समय दिया जा सकता है। उतनी सुन्दरता से दूसरे दिन नहीं दिया जा सकता। बड़े-बड़े व्यापारी और दूकानदार अपना काम दूसरे दिन के लिए नहीं टालते। वे अपने पत्रों का भी तत्काल ही उत्तर देते हैं।

समय के सदुपयोग के उपरान्त हमारे सामने समय की पाबन्दी आती है। ये दोनों गुण ही सफलता प्राप्त करने के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। इन गुणों में से किसी एक के न होने पर हमारे लिए सफलता प्राप्त करना टेढ़ी खीर हो जाता है। मान लिया कि हम अपने समय का सदुपयोग तो करते हैं, परन्तु हम अपने समय के पाबन्द नहीं हैं, तो फिर हम किस प्रकार सफलता प्राप्त कर सकते हैं? समय के पाबन्द न होने के कारण तो हम सफलता के द्वार तक पहुँच कर भी निराश लौट सकते हैं; क्योंकि हम निश्चित समय पर तो काम करते ही नहीं। इस से पता चलता है कि समय की पाबन्दी का गुण भी सफलता के लिए अत्यन्त ही आवश्यक है।

प्रत्येक मनुष्य को अपने समय का पूरा पाबन्द रहना चाहिए। हमें चाहिए कि हम अपने निश्चित समय पर अपना प्रत्येक काम आरम्भ कर दें। आलस्य या प्रमाद-वश उसमें ढील-ढाल न करें। क्योंकि देर का अर्थ भयंकर हानि या मृत्यु ही होता है। प्राचीन काल में जब डाक के हरकारे पैदल चल कर लोगों तक चिट्ठियाँ पहुंचाया करते थे, तो उन्हें ज़रा-सी भी देर होने पर मृत्यु-दण्ड दिया जाता था।

रोम के बादशाह जूलियस सीजर ने राजसभा में थोड़ी-सी देर कर दी, इससे उसके हत्यारे ब्रूटस को अच्छा अवसर मिल गया और उसने सीजर के प्राण ले लिये। नेपोलियन की वाटरलू की हार का प्रधान कारण भी कुछ समय की देर ही थी। उस ज़रा-सी देर ने सारा तख़्ता पलट दिया और नेपोलियन का पतन हो गया। अमेरिका के स्वातन्त्र्य युद्ध में कर्नल राहल ने, जनरल वाशिंगटन की सेना के आगे बढ़ने का समाचार

पाकर तत्काल ही उसका सामना न किया, क्योंकि वह उस समय चौसर खेल रहा था। सेना तैयार करने में उसे थोड़ी-सी देर हो गई और इसका परिणाम यह हुआ कि वह अपने साथियों समेत मार डाला गया।

यह ज़रा-सी देर ही हमारे लिए बहुत घातक है। इस ज़रा-सी देर के कारण ही हमें कितनी बार यात्रा करना रोक देना पड़ता है, क्योंकि गाड़ी छूट चुकी होती है। इस ज़रा-सी देर के कारण ही हम परीक्षा में बैठने से रह जाते हैं। ज़रा-सी देर के कारण ही हम में से बहुतेरों को नौकरी छोड़ घर बैठ जाना पड़ता है। ज़रा-सी देर के कारण ही बड़े-बड़े व्यवसायी और व्यापारी नष्ट हो जाते हैं। कुछ मिनटों की देर के कारण ही बाज़ार में चीज़ों का भाव गिर जाने पर दूकानदारों को बहुत हानि उठानी पड़ती है। रुपये के तनक देर से आने के कारण बहुत से बैंक फेल हो चुके हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस तनक-सी देर ने ही असंख्य जीवनों को नष्ट कर डाला है; बहुत से हंसते हुओं को रुला डाला है; कितने ही राष्ट्रों की स्वतन्त्रता का हरण कर डाला है; कितनी ही हस्तियों को मिटा डाला है; परन्तु तब भी हम इस 'ज़रा-सी देर' का परिणाम नहीं समझते, यह बहुत ही आश्चर्य व दुःख की बात है। हमें आश्चर्य होता है, जब हम देखते हैं कि देर से आने वाला व्यक्ति या देर से काम करने वाला व्यक्ति अपनी सफ़ाई इस तरह देता है—"क्यों जी! कोई बहुत ज्यादा देर थोड़े ही हुई है। मुश्किल से दस मिनट की देर हुई होगी; और दस-पन्द्रह मिनट की देर कोई देर में गिनी जाती है।" खेद है ऐसे व्यक्तियों की बुद्धि पर। उनके लिए दस मिनट समय का कुछ भी मूल्य नहीं है। जो दस मिनट को देर नहीं गिनते, ऐसे लोगों को चाहिये कि वे तत्काल ही अपनी ऐसी भ्रमपूर्ण धारणा को बदल डालें, क्यों कि उनके इस गुण से केवल उनको ही नहीं, दूसरों को भी बहुत हानि होती है। आप विचारिये—क्या आप को अपने मित्र के निश्चित समय पर न

आने के कारण कुछ झंझट नहीं उठानी पड़ी है ? क्या आप को पत्र, अखबार या पुस्तक देर से मिलने के कारण कुछ हानि नहीं उठानी पड़ी है ? क्या आपको ठीक समय पर कोई वस्तु न मिलने के कारण कुछ असुविधा नहीं हुई है ? अवश्य हुई होगी, क्योंकि गेहूँ के साथ घुन भी पिसता है। दोनों ही पक्षों को थोड़ी-बहुत हानि उठानी पड़ती है। इस हानि को दूर करने का सर्वोत्तम उपाय है कि हम स्वयं ही समय के पाबन्द बनें। देर नामक शब्द को बिल्कुल ही भूल जायँ। प्रत्येक कार्य के लिए एक समय निश्चित करलें और फिर उस निश्चित समय पर ही उस कार्य को करें। ऐसा करने से हम स्वयं भी चिन्ताओं व हानियों से मुक्त हो जायँगे और अपने से सम्बन्धित दूसरे व्यक्तियों को भी हानि से बचा सकेंगे।

इँगलैंड के प्रसिद्ध औपन्यासिक सर वाल्टर स्कॉट बहुत ही नियमित जीवन व्यतीत करते थे। उन्होंने प्रत्येक कार्य को एक समय दे रक्खा था; और उस नियमित समय पर ही वे उस काम को किया करते थे। वे कहा करते थे—"ठीक समय पर ठीक तरह से काम करने की आदत डालनी चाहिये, तथा जो कुछ भी करना हो उसे शीघ्र ही कर डालना चाहिये।" उनके अनुसार अनियमितता या अनिश्चितता एक प्रकार का रोग है, जिसका ग्रसित होने पर मनुष्य सफलता के पथ पर ठीक प्रकार से आगे नहीं बढ़ सकता।

अमेरिका के प्रथम राष्ट्रपति जार्ज वाशिंगटन ने अपने कुछ मेहमानों को तीन बजे भोजन के लिए निमन्त्रित किया। मेहमान कुछ देर से आए और उन्होंने देखा कि राष्ट्रपति भोजन कर रहे हैं। यह देखकर उन्हें दुःख हुआ। इस पर राष्ट्रपति ने कहा—"मैं और मेरा नौकर दोनों ही समय के पाबन्द हैं। वह खाना मेज पर लगाने के पूर्व मुझसे केवल यही पूछता है कि समय हो गया है या नहीं ?"

समय के बहुत ही पाबन्द एक सेना के जनरल तो बहुत ही नियमित

थे। वे अपना खाना निश्चित समय पर १२ मिनट के अन्दर खाते थे। अर्थात् वे १ बजे से १ बजकर १२ मिनट तक खाना खाते थे—यह उनका प्रतिदिन का नियम था। एक दिन दुर्भाग्यवश खाने के समय में उन्हें एक बहुत ही आवश्यक कार्य करना पड़ गया। ठीक समय पर खाना मेज़ पर चुन दिया गया। जब वे उस कार्य से निबटे तो १ बजकर १३ मिनट हो चुके थे। उन्होंने अपने भोजन की ओर देखा और फिर अपने पेट पर हाथ फेरा। वास्तव में उन्हें भूख बड़े ज़ोर से लग रही थी, पर उन्होंने खाना खाने के बजाय अपने नौकर को आवाज़ दी और उसे खाना उठा ले जाने को कह दिया।

हमें इस उदाहरण से शिक्षा लेनी चाहिए। वास्तव में नियमितता एक अत्यन्त उत्तम गुण है, जिसका होना प्रत्येक सफलता-इच्छुक मनुष्य में बहुत ही आवश्यक है।

नेपोलियन के सेक्रेटरी को ऑफिस में देर से आने की आदत पड़ गई थी। नेपोलियन एक-दो दिन तो देखता रहा, फिर उसने उसे टोक ही दिया और उससे देर करके आने का कारण पूछा।

'महाशय', उसके सेक्रेटरी ने बन्द गले से उत्तर दिया—'मेरी घड़ी इसके लिए उत्तरदायी है। आज-कल वह ठीक समय नहीं देती है।'

'हाँ', नेपोलियन ने कहा, 'आपको घड़ी बदलनी पड़ेगी, या मुझे सेक्रेटरी बदलना पड़ेगा।'

जॉन एडम्स के विषय में कहा जाता है कि वे समय के इतने पाबन्द थे, कि प्रायः लोग उन्हें देख कर ही अपनी घड़ियों में समय ठीक किया करते थे। एक बार एक सभा में उन्हें कुछ देर हो गई। लोगों को यह देख कर बहुत आश्चर्य हुआ कि आज एडम्स को देर हो गई। परन्तु जब एडम्स ने कमरे में प्रवेश किया, तब उन्होंने दीवार की घड़ी की ओर देखते हुए अपनी घड़ी की ओर नजर डाली, और अपनी घड़ी

उपस्थित मेम्बरों को दिखाते हुए कहा--शायद आपकी घड़ी कुछ तेज है।' बात भी वास्तव में यही थी। वहाँ की घड़ी तीन मिनट तेज थी। मि० एडम्स ठीक समय पर ही वहाँ आये थे।

नियमपूर्वक तथा समय पर काम करने से काम बहुत अच्छे प्रकार से हो जाता है। जब काम अच्छे प्रकार से समाप्त हो जाता है, तब उससे मन को बहुत उत्साह मिलता है, व नया काम करने की प्रेरणा भी मिलती है। इसके विपरीत नियमपूर्वक काम न करने से हमारे काम कभी पूरे नहीं होते। यदि पहले काम अधूरे पड़े रहें, तो फिर हमारा जी नया काम करने की ओर नहीं झुक सकता; और यदि झुक भी जाय तो क्या लाभ ? उस नए काम की भी वही दशा होगी, जो उससे पहले के कामों की हो चुकी है। वह भी अधूरा ही रह जायगा। इन अधूरे कामों से समय का अपव्यय भी होता है, क्योंकि जितना समय उसमें व्यय किया जा चुका है, वह कुछ भी लाभदायक व फलदायक नहीं सिद्ध होता।

हमें अपने में नियमितता का गुण उत्पन्न करना चाहिए, समय पर काम करने की आदत डालनी चाहिए। जो आदमी नियमित व समय के पूरे पाबंद होते हैं, उनसे सम्बन्ध रखना सभी को रुचिकर प्रतीत होता है। सब उनका पूरा विश्वास करते हैं। सफलता भी ऐसे ही मनुष्यों के भाग में आती है।

अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि जीवन का उद्देश्य निश्चित करने के लिए उपयुक्त अवसर कौनसा है। सबसे अच्छा अवसर वह है, जब कि हम अपनी शिक्षा समाप्त कर चुके होते हैं और इस संसार में अपना एक स्थान बनाने के लिए प्रवेश करते हैं। उस समय तक हमारे विचार काफ़ी परिपक्व हो जाते हैं और हम में भला-बुरा समझने की बुद्धि भी आ जाती है। हमें संसार का थोड़ा-बहुत ज्ञान हो चुकता है। ऐसे उपयुक्त समय में यदि हम अपना उद्देश्य स्थिर करलें, और परिश्रम करते चले जायें, तो सफलता स्वयं हमारे चरणों पर आ गिरेगी। जब हम एक बार अपने लक्ष्य

में सफलता प्राप्त कर लेंगे, तो दूसरी बार हम पहली बार से भी उत्तम विषय को अपना लक्ष्य बनावेंगे, और अपने उत्साहपूर्ण हृदय से नवीनता व सुन्दरता-पूर्वक परिश्रम कर पहली बार से भी अधिक सफल होंगे। इस प्रकार हम एक के बाद एक सफलता प्राप्त करते हुए जीवन की सच्ची सफलता प्राप्त कर लेंगे।

बहुत-से मनुष्य अपने जीवन के प्रातःकाल में ही अपना उद्देश्य निश्चित कर लेते हैं। उस समय उन्हें दुनिया का बिल्कुल ही अनुभव नहीं होता। परन्तु देखा जाता है कि ऐसे मनुष्य बाद में अपने जीवन में अपने उद्देश्यों में पूर्ण सफल हुए हैं। दुनिया के महान् जनरल नेपोलियन ने बचपन में ही निश्चय कर लिया था कि वह एक सिपाही बनेगा, क्योंकि उसको सिपाही बनना है और उसका जन्म ही सिपाही बनने के लिये हुआ है। दस वर्ष की अवस्था से ही वह सिपाहियों का-सा कड़ा जीवन व्यतीत करने लग गया था। स्कूल जाते समय वह अपनी अच्छी रोटियाँ सिपाहियों को दे दिया करता था, और उनके बदले में उनकी जई की सख़्त रोटियाँ ले लिया करता था, तथा उनसे ही भूख मिटाने का अभ्यास किया करता था। इन सब बातों का जो परिणाम हुआ, वह किसी से छिपा नहीं है। नेपोलियन ने समस्त योरप को जीत कर तहलका मचा दिया।

जीवन का उद्देश्य

जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए सब से पहले हमें अपना उद्देश्य निश्चित करना चाहिये। उद्देश्य और लक्ष्य निश्चित किये बिना हम सफलता नहीं पा सकते। जो मनुष्य अपना उद्देश्य स्थिर किए बिना ही अपना जीवन आरम्भ कर देते हैं, उनकी स्थिति बहुत कुछ उस डोंगी जैसी होती है, जो बिना मल्लाह के जल-प्रवाह में बही जा रही है। हवा के थपेड़े और जल-धारा उसे जिस दिशा में चाहें उसी दिशा में मोड़ दें तथा अन्त में किसी किनारे पर ला पटकें जहाँ से वह फिर उसी प्रकार भटकती फिरे। इस कारण प्रत्येक मनुष्य को यह सोच लेना आवश्यक है, कि इस जीवन में उसे क्या-क्या करना है; वह इस जीवन में क्या करेगा; उसे क्या बनना है। जब वह इस प्रकार से अपना उद्देश्य स्थिर कर ले, तब उसे अपने उद्देश्य को सफल करने के लिए प्रयत्न आरम्भ कर देना चाहिए। बिना लक्ष्य स्थिर किए लगातार परिश्रम करते चले जाने वाला व्यक्ति उस मुसाफ़िर के समान होता है, जो मार्ग के दुःखों व कठिनाइयों को सहन करता हुआ आगे बढ़ता चला जाय, जब कि उसे अपनी यात्रा का गन्तव्य स्थान ही न मालूम हो। वह पूर्णतया भाग्य के ही भरोसे हो—कि जिधर भाग्य ले जायगा उधर ही चले जायँगे। ऐसे व्यक्ति बुद्धिमान् नहीं कहे जा सकते और न ही वे कभी सफलता प्राप्त करते हैं। यों प्रयत्न करना बुरा नहीं, बहुत ही अच्छी बात है; परन्तु जब यह नहीं जानते कि प्रयत्न किस हेतु किया जा रहा है, तब प्रयत्न करना सचमुच हास्यास्पद प्रतीत होता है। प्रयत्न तो कुछ न कुछ उद्देश्य सामने रख कर ही किया जाना चाहिये।

इन सब बातों का तात्पर्य यही है कि सफलता प्राप्त करने के लिये, सबसे पहले हमें अपना उद्देश्य स्थिर कर लेना चाहिए, तब आगे बढ़ना चाहिए।

एक विद्यार्थी ने कक्षा ६ में पढ़ते समय अपना दृढ़ निश्चय कर लिया कि वह उसी शिक्षालय का प्रिंसिपिल बनेगा। अपने इस विचार को सदैव सामने और ताजा रखने के लिए उसने अपनी प्रत्येक वस्तु में 'पी' (P) का अक्षर अंकित कर दिया। उसके कमरे के दरवाजों पर, उसकी पुस्तकों व कापियों पर, उसके कपड़ों व सन्दूकों पर 'पी' अक्षर पाया जाने लगा। इस पर उसकी कक्षा के सब विद्यार्थियों ने उसका नाम मिस्टर 'पी' रख दिया! जब कभी लड़के उससे कुतूहलपूर्वक 'पी' अक्षर का रहस्य पूछते तब वह केवल मुस्करा दिया करता था। सदैव ही 'पी' अक्षर सामने रहने से, उस विद्यार्थी को हमेशा वही ध्यान रहता था और वह कठिन परिश्रम से पढ़ा करता था। अन्त में उसे सफलता मिली और वह उन्नति करता हुआ उसी कालेज का पिंसिपिल बन गया। तब उसने उस 'पी अक्षर का रहस्य खोला।

इस उदाहरण से हमें जीवन के उद्देश्य और दृढ़ता के सम्बन्ध में शिक्षा मिलती है।

अपने जीवन का उद्देश्य चुनने में हमें बहुत सावधानी बरतनी चाहिए। हमें उस समय यह सोचना चाहिये कि हमारी परिस्थिति क्या है? तथा क्या अपनी इस परिस्थिति में हम अपनी महत्त्वाकांक्षा को पूर्ण कर सकेंगे? और यदि हम देखें कि अपनी उच्चाकांक्षा को सफल बनाने के लिए हमारे पास उतने साधन नहीं हैं तो हमें तुरन्त अपनी उस आकांक्षा को दफ़ना देना चाहिये। क्योंकि पैर उतने ही फैलाये जा सकते हैं, जितनी लम्बी चादर होती है। झोंपड़े में रह कर महल के स्वप्न नहीं देखे जा सकते। हम उस इच्छा या आकांक्षा को किस प्रकार पूरा कर सकते हैं, जिसको

पूरा करने के लिये हमारे पास न तो पर्याप्त साधन होते हैं, और न ही जो हमारी शरीरिक, मानसिक व आर्थिक शक्ति के अनुकूल होती है। हमारी इच्छाएँ हमारे साधनों से बड़ी नहीं होनी चाहिएँ और न ही हमारे उद्देश्य हमारे विचारों से लम्बे-चौड़े होने चाहिएँ। हमें तो अपने लिये ऐसे ही कार्य चुनने चाहिएँ जो हमारी योग्यता व हमारी शक्ति से परे न हों। यदि हमारा चुना हुआ काम हमारी रुचि, अवस्था और शक्ति के अनुकूल न हुआ, तो हम उस कार्य में कभी सफल नहीं हो सकते। हमें चाहिये जीवन का उद्देश्य निश्चित करते समय, अपनी रुचि का अवश्य ही ध्यान रक्खें। जिस काम की ओर हमारी रुचि नहीं रहती, वह काम हम कभी पूरा नहीं कर सकते। तथा प्रकृति अधूरे कार्यों को देख कर क्रुद्ध होती है और उसका फल काम करने वाले को चखना पड़ता है।

स्टेट-मार्डिन का यह कथन बहुत ही ग्राह्य है—"हमें सफलता पाने के लिए ऐसा कार्य चुनना चाहिये, जिसमें कि हम अपने अनुभव और वृत्ति अधिकाधिक मात्रा में केन्द्रीभूत कर सकें। ऐसा करने से न केवल हमें अपने कार्य में आनन्द आयेगा, बल्कि हम उसमें अपनी अधिक योग्यता और बुद्धि भी लगा सकेंगे—और यह हमारा उत्तम मूलधन होगा।"

सिडनी स्मिथ ने भी बहुत कुछ यही कहा है—"जिसमें तुम्हारी प्रवृत्ति हैं, उसी में लगे रहो! प्रवृत्ति तुम्हें जो कुछ बनाना चाहती है, वही बनो। तुम्हें सफलता अवश्य मिलेगी। इसके विपरीत यदि तुम और कुछ बनना चाहोगे, तो कुछ भी न बन सकोगे।"

दूसरी बात जिस को कि हमें जीवन का उद्देश्य स्थिर करते समय ध्यान में रखना चाहिए, वह यह है कि हम उस कार्य को कभी अपना लक्ष्य न बनाएँ, जो कि हमारी शक्ति से बाहर हो। जिस कार्य के लिए हमारी अन्तरात्मा हामी न भरती हो, उस काम को युवावस्था के उत्साह के कारण ही कभी न करना चाहिए!

बहुत खेद की बात है कि वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में बच्चों को यह नहीं बताया जाता कि उनके जीवन अथवा उनकी शिक्षा का क्या उद्देश्य है; और उन्हें जीवन में क्या काम करने हैं। इसका परिणाम यह होरहा है कि हमारे जीवन का उद्देश्य केवल दफ़्तरों की नौकरी करना ही रह गया है। हमारी शिक्षा का उद्देश्य हमारा ज्ञान बढ़ाना, अथवा हमें अपना भरण-पोषण करने योग्य बनाना नहीं रह गया है, बल्कि हमें तीस या चालीस रुपए मासिक का क्लर्क बनाना ही रह गया है। परन्तु यह बात बिल्कुल ग़लत है। हमारे जीवन का उद्देश्य दफ़्तर की नौकरी नहीं है, वरन् इसके विपरीत स्वतन्त्रतापूर्वक उत्तमतर जीवन व्यतीत करना है। यह तभी हो सकता है जब हम अपने जीवन के उद्देश्य में सफल हो जायँ।

अपना उद्देश्य निश्चित करते समय हमें इस बात का भी पूरा ध्यान रखना चाहिए कि धन ही उसका एकमात्र आधार न हो। हमारे जीवन का उद्देश्य केवल पेट भरना ही न होना चाहिये। यह बात तो गौण है। धनवान् होना ही हमारा प्रधान लक्ष्य नहीं होना चाहिये। क्योंकि दुनिया में धन ही सब कुछ नहीं है। रुपये बटोरने वाले लोग, अपने लक्ष्य में सफल भलेही हो जायँ, परन्तु वास्तविक सफलता उनके पल्ले नहीं पड़ सकती।

बहुत से मूढ़मति वालों के अनुसार हमारा जन्म ही संसार में आनन्द करने के लिए हुआ है। वे लोग आराम से जीवन व्यतीत करने को ही अपना परम लक्ष्य मानते हैं। यदि धन कमाना और उसका उपभोग करना ही प्रत्येक के जीवन का उद्देश्य हो तो फिर इस संसार में हमारे जन्म लेने से लाभ ही क्या हुआ? अच्छा होता कि हम जन्म ही न लेते, क्योंकि अपना-अपना पेट तो पशु तक भर लेते हैं। हमारे जीवन का तो केवल यही उद्देश्य होना चाहिए कि हम मनुष्य बनें और संसार में परोपकार करें।

पहले-पहल अपना उद्देश्य स्थिर करने में किसी प्रकार की जल्दी या उतावलापन नहीं करना चाहिए। अपना उद्देश्य निश्चित करने से पूर्व उस

पर गम्भीर मनन करना चाहिये तथा उसके उपरान्त उसे चुनना चाहिए। फिर उस उद्देश्य के पूर्ण होने तक उसी पर स्थिर रहना चाहिये। एक बार उद्देश्य निश्चित कर फिर उसे त्यागना न चाहिये, और न ही यह समझना चाहिए कि हम इसको पूर्ण नहीं कर सकते—क्योंकि यह बहुत ही कष्टदायक है, अथवा काफ़ी समय लेने वाला है। इन सब बातों के विषय में तो पूर्व ही सोच लेना चाहिए। उसके पश्चात् तो धीरज रखना चाहिए और उस लक्ष्य तक पहुँचने का प्रयत्न करना चाहिए।

जिस उद्देश्य के सम्बन्ध में ज़रा-सा भी सन्देह हो, जिसके न्याययुक्त और फलदायक होने का शक हो, उस उद्देश्य को हमें तत्काल त्याग देना चाहिए। क्योंकि जिस उद्देश्य में ज़रा भी दुर्गुण हो, वह कभी सफल नहीं हो सकता। ऐसे सन्देहजनक उद्देश्य के छोड़ देने में ही कुशल होती है। इस संसार में उद्देश्यों की कमी नहीं है, कमी है केवल हमारे उनका निश्चित करने में। अपने लिये काम ढूँढ़ निकालना कोई कठिन कार्य नहीं है। ऐसे समय में हमारी प्राकृतिक प्रवृत्ति हमारी सहायता करती है।

अपने लिए काम चुनते समय हमें अपने हृदय से यह नहीं पूछना चाहिये कि हम कौनसा कार्य करके सफलता प्राप्त कर लेंगे। हमें तो उसी काम को अपना लक्ष्य बनाना चाहिये जिसमें हम अपनी सारी शक्ति व सारा अनुभव लगा सकते हों और सफल हो सकते हों। स्वेट् मार्डिन का कथन है—'संसार नहीं चाहता कि तुम वकील, मन्त्री, डाक्टर अथवा व्यापारी बन जाओ। वह तुम्हारे लिए कार्य निर्धारित नहीं करता। वह तो केवल यही चाहता है कि जब तुम किसी काम में हाथ लगाओ, तब उस पर तुम्हारा पूरा अधिकार रहे और तुम उसमें प्रवीण हो जाओ। यदि तुम अपने काम में सफल हो जाओगे तो संसार तुम्हारी प्रशंसा करेगा और तुम्हारे लिए सब दरवाज़े खुल जायँगे।"

सचाई

जीवन में हमें न जाने कितना क्रय करना पड़ता है। उस क्रय में हमें दो प्रकार के व्यापारियों से काम पड़ता है। एक तो वे व्यापारी, जिनकी वस्तु मोल लेते समय हम कभी सन्देहरहित नहीं होते। यदि वस्तु के दाम अधिक हैं, तो ऐसा लगता है कि हमें ठगा जा रहा है। यदि उसके दाम बाजार की उसी प्रकार की दूसरी जगह की वस्तु की अपेक्षा कम हैं, तो हमें उस पर नक़ली होने का सन्देह होता है। अभिप्राय यह है कि हम किसी भी मूल्य पर निस्सन्देहता और विश्वास प्राप्त नहीं कर पाते। पर कुछ वस्तुएँ ऐसी भी होती हैं जिनको लेते समय न हमें मोल-तोल करना आवश्यक होता है और न किसी प्रकार का सन्देह करना। हमें ऐसा अनुभव होता है कि हम जो धन व्यय कर रहे हैं, उसका ठीक बदला हमें मिल रहा है। डाकख़ाने की टिकटें, रेल की टिकटें, वेस्ट एण्ड कम्पनी की घड़ियाँ, हिज मास्टरर्स वायस के ग्रामोफोन और रिकार्ड मोल लेते समय हमें एक प्रकार की निश्चिन्तता रहती है, चाहे उन वस्तुओं के दाम हमें उसी प्रकार की मिलने वाली दूसरी वस्तुओं की अपेक्षा अधिक ही देने पड़ें हों। इन निश्चिन्तता और सुनिश्चितता के मूल में कौन भावना काम करती है

ग्राहम नाम के एक घड़ीसाज़ का उदाहरण इस यथार्थता की प्रतीति में हमारा सहायक हो सकता है। वह टामपियन का शिष्य था, जिसका नाम घड़ी की उत्तमता के लिए प्रमाणपत्र समझा जाता था। ऐसे कारीगरों के नाम की नक़ल होना स्वाभाविक है। जब टायपियन की घड़ियाँ लोकप्रिय हो गईं, तब लोगों ने उनकी नक़ल करना प्रारम्भ कर दिया। एक बार

इसी प्रकार की एक घड़ी स्वयं टामपियन की दुकान पर मरम्मत के लिए आई जो केवल कुछ सप्ताह पूर्व ख़रीदी गई थी, पर ठीक समय नहीं बता रही थी। उसके डायल पर टामपियन का नाम था। टामपियन ने उसे एक बार ध्यान से देखा और दूसरे ही क्षण हथौड़े से कूट कर चूर-चूर कर दिया। फिर उसने ग्राहक को दूसरी नई घड़ी देते हुए कहा—"लीजिए महाशय, अब आपको इस प्रकार की शिकायत नहीं होगी।"

इस नीति का ग्राहक पर भी पूरा प्रभाव पड़ा था और वह जान गया था कि व्यापार में सचाई का क्या महत्त्व है। उसने एक ग्राहक को अपनी घड़ी बेचते हुए एक बार कहा था—"लीजिए महाशय, इस घड़ी को मैंने स्वयं अपने हाथों बनाया है। यदि पाँच वर्ष के भीतर उसमें एक सेकण्ड का अन्तर आ जाय तो मैं आपके दाम वापस कर दूँगा।"

ग्राहक उस घड़ी को लेकर किसी उष्ण कटिबन्ध के देश में नौकरी पर चया गया। वहाँ से ५ वर्ष बाद लौटा, तब ग्राहम को घड़ी दिखाते हुए उसने कहा कि "इस लम्बे समय में इसमें केवल ७ सेकण्ड का अन्तर आया है। और वह भी केवल प्रादेशिक तापमान की भिन्नता के कारण।"

पर ग्राहम को अपनी बात स्मरण थी। उस ग्राहक को दाम वापस करते हुए उसने कहा—"इससे क्या होता है! मुझे अपनी प्रतिज्ञा स्मरण है। अब यह मैं आपके पास नहीं रहने दे सकता।"

व्यापारिक सफलता ईमानदारी और सचाई पर निर्भर करती है। यह हो सकता है, कि विज्ञापन के बल पर कुछ समय के लिये आप अपनी चीज बाजार में चला दें और उसमें कुछ पैसा भी बटोर लें; पर यदि उसमें यथार्थता नहीं है, तो आपका व्यापार अधिक समय तक नहीं चल सकता और न आपकी दूसरी वस्तुओं पर ही किसी को विश्वास होगा।

बाजार के अधिकांश कार्य 'साख' पर चलते हैं। यह साख क्या है? यह सचाई का ही दूसरा नाम है। किसी के साथ व्यापार या कारबार करते

समय यह बात मन में स्वभावतः आती है कि उसकी साख कितनी है। अर्थात् वह अपने वचन का पालन कितना कर सकता है। जिनकी बाजार में साख रहती है, उन्हें लाखों रुपए बैंकों से बिना विशेष लिखा-पढ़ी के मिल जाते हैं और वे मामूली हुण्डी-पर्चे से करोड़ों का कारबार करते हैं।

राष्ट्रपति इलियट ने एक स्थान पर लिखा है--"तुम्हारे लिए यह जानना सबसे अधिक आवश्यक है कि लोग तुम्हारे बारे में क्या राय रखते हैं। इस सम्बन्ध में उनकी राय का अधिक महत्त्व नहीं है जो तुम्हारे मेली-मिलापी या निकट संपर्क वाले हैं। महत्त्वपूर्ण राय उनकी मानी जायगी जिन्होंने तुम्हें कभी प्रत्यक्ष देखा भी नहीं है और जिनकी धारणा का मूल-आधार लोकचर्चा है। यदि वह चर्चा तुम्हारे अनुकूल हो तो निस्सन्देह तुम अच्छे आदमी हो।"

महात्मा गाँधी की जीवनी का जिन्होंने निकट से अध्ययन किया है, उनका कहना है कि उनमें प्रतिभा-जैसा कोई आश्चर्यजनक गुण नहीं है। भारत में ही ऐसे अनेक पुरुष हैं, जिनको अँग्रेजी-राजनीति तथा तत्सम्बन्धी अन्य विषयों का ज्ञान गाँधीजी से कहीं अधिक है। फिर भी गाँधीजी में ऐसी बातें हैं जिनके कारण देश का बच्चा-बच्चा उनके संकेत मात्र पर अपने प्राण निछावर करने को तैयार रहता है। ये बातें हैं—सत्य और अहिंसा। उन्होंने अपने जीवन में कभी झूठ नहीं बोला। उनके व्यवहार में सचाई सब को स्पष्ट दिखाई देती है। राजनीति में सचाई का प्रयोग करके उसे धर्म के समकक्ष प्रतिष्ठित कर देना गाँधीजी का ही काम है। उनके इस गुण की प्रशंसा उनके विरोधी भी मुक्तकण्ठ से करते देखे जाते हैं।

जिन दिनों गाँधीजी वकालत करते थे। उन दिनों उन्होंने अपना सिद्धान्त बना लिया था, कि सदैव उसी पक्ष की वकालत करेंगे जिधर सचाई होगी।। चाहे उन्हें पैसे की आमदनी न हो, पर वे झूठ का समर्थन नहीं करेंगे। यद्यपि वे सफल वकील नहीं बन सके, पर इस सचाई ने उन्हें जो कुछ

बना दिया उसके सामने वकालत का क्या मूल्य है ? यही सचाई उनके राजनीतिक प्रयोगों का आधार रही है और इसी बल पर वे विश्ववन्द्य बन गए हैं। उनके नेतृत्व में जनता का अटल विश्वास केवल इसी कारण है, कि जनता समझती है कि वे जो कुछ कहते हैं, सचाई से प्रेरित होकर ही।

व्यापार और कारीगरी के क्षेत्र में यह सचाई अपने दूसरे रूप में प्रकट होती है। कारीगर एक वस्तु बनाता है। यदि उस वस्तु पर उसे आत्म-सन्तोष हो जाता है, अर्थात् वह अपने मन में यह विश्वास कर लेता है, कि मेरी बनाई वस्तु में वे समस्त गुण विद्यमान हैं जिनका मैं दावा करता हूँ, तो कोई कारण नहीं कि जनता में उसकी वस्तु की खपत और आदर आशा से अधिक न हो। पर यह होता तभी है जब निर्माता पूरी सचाई के साथ अपने प्राण अपनी निर्मित वस्तु में डाल देता है। 'दिशा-निर्देशक यंत्र' की कहानी हम में से अधिकों को ज्ञात है। सोलहवीं शताब्दी में स्पेन की सरकार ने अनुभव किया, कि नाविकों के लिए एक ऐसे यंत्र की नितान्त आवश्यकता है जो दिशा-निर्देशन का कार्य ठीक-ठीक कर सके; अर्थात् उसके द्वारा नाविक यह जान सकें, कि जहाँ उसका जहाज़ चल रहा है वहाँ से लन्दन, शिकागो या पेरिस किधर को है। ऐसा यंत्र बनानेवाले को वहाँ की सरकार द्वारा चार सहस्र रुपए पुरस्कार देने की घोषणा की गई थी। उसके ठीक दो वर्ष पश्चात् इंगलैण्ड की सरकार ने इस आशय की एक घोषणा की कि जो व्यक्ति ऐसा यंत्र बना देगा, जिससे स्वदेश से छह महीने पूर्व निकला हुआ जहाज़ अपने देशान्तर को ६० मील के घेरे में बतला सके, तो उसे पाँच हज़ार पौण्ड पुरस्कार दिया जायगा। यदि वह यन्त्र ऐसा अच्छा हो, जिसके द्वारा जहाज़ अपना देशान्तर ४० मील के घेरे में बतला सके, तो उसे ७५०० पौण्ड का पुरस्कार मिलेगा। इसी प्रकार २० मील के घेरे में बताने वाले को दस हज़ार और नितान्त शुद्ध बताने वाले को बीस हज़ार पौण्ड पुरस्कार देने की घोषणा की गई

थी। संसार के अनेक घड़ीसाज़ इस प्रकार का यन्त्र बनाने के लिए वर्षों माथापच्ची करते रहे, पर कोई सफल न हो सका। १७६१ ई० में एक घड़ीसाज़ ने, जिसका नाम जान हेरिसन था, अपना क्रोनोमीटर नामक यंत्र परीक्षा के लिए उपस्थित किया। १४७ दिन की यात्रा में केवल १५ सेकण्ड का अन्तर निकला, अतः उसे २० हजार पौंड का पुरस्कार मिल गया। इस व्यक्ति ने क्रोनोमीटर के बनाने में ४० वर्ष परिश्रम किया था, और उसकी अँगुलियाँ यन्त्र के समान ही संवेदनासूचक हो गई थीं।

दिल्ली के प्रसिद्ध जौहरी भगवानदास की कहानी प्रसिद्ध है। एक बार एक रानी उनकी दुकान पर कोई रत्नजटित आभूषण खरीदने गई। कर्मचारियों ने उसे अनेक प्रकार के जड़ाऊ आभूषण दिखाए, पर वे रानी को पसन्द नहीं आए। अन्ततः रानी की दृष्टि एक हार पर पड़ी जो बहुमूल्य मखमली केस में रक्खा था। जौहरी उस समय दुकान में नहीं था। नौकरों ने चालीस हजार में हार रानी के हाथ बेच दिया और वे उसे लेकर लौट चलीं।

अभी वे दुकान की ड्योढ़ी पर ही थीं कि उधर से भगवानदास जौहरी आते दिखाई दिए। रानी को रोककर आदरपूर्वक उन्होंने खरीदा हुआ आभूषण दिखाने की प्रार्थना की, पर रानी ने उनकी प्रार्थना पर ध्यान नही दिया, और वे उसे लेकर चलने लगीं। जौहरी के लिए यह स्थिति असह्य थी। अन्ततः रानी को इस शर्त पर उन्होंने हार ले जाने दिया कि वे अपना मूल्य वापस लिए जायँ और वह हार अपने जौहरी को दिखलाएँ। जब वह पसन्द कर ले तब मूल्य के संबंध में बातचीत करें।

वही किया गया। रानी ने हार जौहरी को दिखलाया और उसने उसकी बहुत प्रशंसा की। जब भगवानदास के पास मूल्य के संबंध में सूचना आई; तब उन्होंने उसका मूल्य केवल सौ रुपया लिख कर भेज दिया। राज-दरबार को आश्चर्य में डालने के लिए यह पर्याप्त था।

राजा-द्वारा बुलाए जाने पर भगवानदास ने निवेदन किया—"महाराज,

वह हार नक़ली है। उसमें लगा हुआ एक भी रत्न सच्चा नहीं है। उसका २००) मूल्य भी अधिक ही है, पर वह केवल कारीगर की कारीगरी का मूल्य है, वस्तु की यथार्थता का नहीं।" और उन्होंने हार का एक रत्न सब के सामने वहीं तोड़ कर अपने कथन की सत्यता प्रमाणित कर दी।

इस व्यापार से भगवानदास को कुछ आर्थिक हानि अवश्य उठानी पड़ी। पर वह हानि उस लाभ की तुलना में नितान्त नगण्य थी, जो उन्हें राज-दरबार का परम-विश्वासपात्र बनकर प्राप्त हुआ और जिसके कारण उनका नाम आज तक प्रसिद्ध है।

किसी शहर के एक मिस्त्री का—जो मशीनों की मरम्मत करता था—उल्लेख एक विद्वान् ने अपनी स्मरण-पुस्तक में इस प्रकार किया है—

"मेरा टायपरायटर बिगड़ गया था। मैं उससे केवल काम लेना जानता था, उसकी मरम्मत के सम्बन्ध में नहीं। मैं उसे कई मिस्त्रियों के पास बारी बारी से ले गया और प्रत्येक ने उसमें कुछ न कुछ मरम्मत की; पर मैं प्रत्येक बार देखता था, कि टायपरायटर थोड़ा-सा काम करने के बाद फिर अपनी पूर्व दशा पर पहुँच जाता है। मेरे काम की हानि हो रही थी! अन्त में एक दिन एक बूढ़ा मिस्त्री काम ढूँढ़ते-ढूँढ़ते मेरे यहाँ आया। मैंने उसे मशीन दिखाई, पर मेरे मन में यह सन्देह जैसे घर कर गया था, कि ज़ब अच्छे-से-अच्छे मिस्त्री इसे ठीक न कर सके, तब यह बेचारा क्या करेगा।

"बुड्ढे ने पहले मशीन को उलट-पलट कर बड़े ध्यान से देखा, फिर कहा—'आप आज्ञा दें तो मैं मशीन को खोलकर आपके सामने फ़िट करूँ।' 'क्या मज़दूरी लोगे ?'—मैंने पूछा। उत्तर में उसने केवल मुस्करा दिया और मेरे उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना उसने मशीन को खोल डाला। उसने प्रत्येक पुर्ज़े को तेल से धोकर साफ़ किया, गुटकों को बदला और फिर उसे फ़िट करके मेरी मेज़ पर रखते हुए कहा—'आज इससे काम करके देखिये। कल इसी समय मैं फिर आऊँगा।' और बिना कुछ माँगे वह चुपचाप चला गया।

"मैंने काम करके देखा, मशीन सचमुच नई की तरह चल रही थी। दूसरे दिन ठीक समय पर मिस्त्री फिर आया, उसने मशीन के एक भाग को फिर खोला और एक पुराना पुर्जा बदल कर नया पुर्जा लगा दिया। फिर बोला, 'अब ४-५ वर्ष तक यह आपको परेशान न करेगी। आठ दिन काम लेकर देखिये, और उसको बाद बारह रुपए मेरे घर पर इस पते से भेज दीजिये।' और उसने अपना पता मुझे दे दिया। निस्सन्देह मजदूरी की रक़म मेरे अनुमान से कम ही थी।

"मेरी मशीन आज पाँच वर्ष बाद भी उसी तरह चल रही है, पर दुःख है कि वह मिस्त्री अब इस संसार में नहीं है। अपने जीवन में ऐसे सच्चे और ईमानदार कारीगर मुझे कम ही देखने को मिले होंगे।"

सचाई एक शक्ति है और कारीगर का वही सबसे बड़ा विज्ञापन है।

'हाऊस अ'फ़ कामन्स' की एक सभा में वाद-विवाद के अवसर पर एक सदस्य ने दूसरे पर कटाक्ष करते हुए कहा था—"जी मैं आपको तब से जानता हूँ जब कि आप मेरे पिता के यहाँ जूतों पर पालिश करने के लिये नौकर थे।" दूसरे सदस्य ने तुरन्त उत्तर दिया—"जी, मुझे इसका गर्व है कि मैं इतने छोटे स्थान से बढ़ते हुए इस पद पर पहुँचा हूँ। साथ ही मैं यह भी विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ, कि मेरे बाद आपके पिता को उतनी अच्छी तरह पालिश करने वाला शायद ही मिला हो, क्योंकि मैं अपने उस काम को भी दिलचस्पी, ईमानदारी और सचाई के साथ करता था।"

मनुष्य सामाजिक जीव है। समाज के अन्य सदस्यों के साथ व्यवहार करते हुए पद-पद पर उसे अपनी सचाई और ईमानदारी का परिचय देना होता है। जो इस परिचय में सबसे अधिक सफल होता है, समाज उसे ही अपना अग्रणी बनाता है। गाँव के मुखिया और बाजार के चौधरी से लेकर फेडरल कोर्ट के विचारपतियों तक, सामाजिक महत्त्व के जितने भी पद हैं, उन सब का आधार ईमानदारी और सचाई ही है। आपका कस्बे

और शहर में ऐसे दुकानदार मिलेंगे जिनकी दुकान पर वस्तुएँ एक निर्धारित मूल्य पर ही बिकती दिखाई देंगी, भले ही खरीद करने वाला बच्चा है, या बूढ़ा, अमीर है या गरीब ! इसके विरुद्ध जो दुकानदार केवल यह समझ कर कि ग्राहक बच्चा है, उससे अधिक पैसे ऐंठने का प्रयत्न करता है, वह अपना विश्वास तो खो ही बैठता है, अपनी आदत भी बिगाड़ लेता है, जिसके कारण कुछ ही दिनों बाद उसका व्यापार चौपट हो जाता है।

एक परीक्षक ने एक परीक्षा-भवन में एक बार ईमानदारी और सचाई का विचित्र प्रकार का प्रयोग किया था। उसने छात्रों को प्रश्न-पत्र देदिये और उदासीन मुद्रा में वह यह देखने लगा कि उनमें से कौन छात्र प्रश्नों का उत्तर किस प्रकार लिखता है। कुछ छात्र ऐसे थे, जिन्हें प्रश्नों के उत्तर आते थे। उन्होंने बिना इधर-उधर किए अपनी बुद्धि के अनुसार उत्तर देदिए। कुछ छात्र ऐसे थे जो अपने साथ पर्चे लाए थे। परीक्षक को असावधान देखकर उन्होंने अपने पर्चे निकाले और उनसे नकल करके उत्तर लिखे। कुछ छात्र ऐसे थे जिन्हें प्रश्नों के उत्तर नहीं आते थे, पर जो नक़ल करना अनुचित समझते थे। उन्होंने जो समझ पड़ा, लिख दिया।

परीक्षा-फल में देखा गया कि नं० १ और ३ के तो सब छात्र उतीर्ण थे, पर नं० २ के सब अनुत्तीर्ण थे। उनकी उत्तरपुस्तकों पर यह लिखा हुआ था, कि सचाई और ईमानदारी पर विश्वास रखने वाला छात्र उस छात्र से अच्छा है जो झूँठ और बेईमानी द्वारा सफलता प्राप्त करना चाहता है। ऐसे नागरिक सचमुच अपने जीवन में समाज के लिये बड़े घातक होंगे जो अपनी बेईमानी और चालाकी द्वारा ही सफलता पाने में विश्वास रखते हैं।

जीवन-क्षेत्र में जिन्हें सफलता मिली है, उनके चरित को ध्यान से देख जाइए। आप देखेंगे कि दृढ़ता, उत्साह, लगन, तत्परता, धैर्य और बुद्धिमत्ता के अतिरिक्त उनमें कोई ऐसा गुण भी अवश्य था, जिसके कारण

लोग उन पर अत्यधिक आस्था रखते थे। वह गुण था सचाई। इसको उन्होंने रुपए से अधिक महत्त्व दिया था।

दूसरे की बेईमानी से सब दुखी होते हैं। यह मानव-स्वभाव ही है कि हम दूसरे की आलोचना करते समय अधिक-से-अधिक स्पष्ट और ईमानदार बन जाते हैं। पर क्या अपने अन्तःकरण के प्रति भी हम उतने ही स्पष्ट और ईमानदार रहते हैं? अपने प्रत्येक ऐसे कार्य के पश्चात् एकान्त में अपने हृदय पर हाथ रखकर अपने अन्तःकरण की ध्वनि सुनिए, वह क्या कहती है? क्या आपने किसी को वाग्जाल में फँसाकर पैसा ठगने का प्रयत्न नहीं किया है? क्या आपने दूसरे की असावधानी, शीघ्रता, व्यस्तता और ना-समझी का अनुचित लाभ उठाकर उसके सिर अपना खोटा सिक्का मढ़ने का प्रयत्य नहीं किया है? क्या आपने दूसरे से वही व्यवहार किया है, जैसा आप अपने साथ कराना पसन्द करते? यदि आप अपने प्रति सच्चे हैं, आपके अन्तःकरण की ध्वनि आपका अनुमोदन करती है, तो मैं विश्वास दिलाता हूँ कि आप सफल नागरिक हैं, आप सज्जन हैं, आपका चरित्र आदर्श है।

बचपन में एक ईमानदार फ़कीर की कहानी पढ़ी होगी। तुर्किस्तान में आईन नदी के किनारे उसकी झोंपड़ी थी। नदी में एक दिन एक सेब बहता आरहा था। फ़कीर ने उसे निकाल कर खा लिया। दूसरे ही क्षण उसकी आत्मा ने धिक्कारा कि इस सेब पर तेरा क्या अधिकार था? वह सेब के मालिक की तलाश में नदी के चढ़ाव की ओर चला। कई दिन चलने पर उसे एक बाग़ मिला, जिसके वृक्षों की डालियाँ नदी के पानी से छू रही थीं। वह सेब इन्हीं डालों से गिरा होगा। फ़कीर बाग़ के भीतर गया। माली से पूछा तो ज्ञात हुआ कि उस बाग़ की मालकिन एक शाहज़ादी है जो शहर बुखारा में रहती है। भूख-प्यास और मार्ग की कठिनाइयाँ झेलता, कई दिन निरन्तर यात्रा करता, वह बुख़ारा पहुँचा और बड़ी कठिनाई से उसने शाहज़ादी से भेंट की। शाहज़ादी ने उसकी कहानी सुनी और हँसकर कहा कि "इस

छोटी-सी बात के लिए आपने इतना कष्ट उठाया।" इस पर फ़कीर ने बड़े ही मार्मिक शब्दों में उत्तर दिया--"आपकी समझ से यह बात छोटी है, आप शाहज़ादी हैं और एक सेब का--जो जल में टपक पड़ा था--मूल्य आपकी दृष्टि में अधिक न था। पर उसी सेब के मूल्य में मुझे अपनी सारी ईमानदारी देनी पड़ रही थी, अपना सारा संचित तप और संयम देना पड़ रहा था, और इस प्रकार अपना लोक और परलोक देना पड़ रहा था। आप ही सोचिए कि उस एक सेब के फल का मेरी दृष्टि में का मूल्य था ?"

उस ईमानदार बच्चे की कहानी भी पढ़ी होगी, जो माघ-पौष के जाड़े की रात में ठिठुरता हुआ कुछ साथियों के साथ एक दुर्गम मार्ग से यात्रा कर रहा था। माँ ने उसकी गुदड़ी में कुछ अशर्फियाँ टाँक दी थीं, जिससे कोई जान न सके। मार्ग में डाकुओं ने आक्रमण किया, जब वे अन्य यात्रियों को लूट चुके तब उन्होंने उस लड़के से पूछा--"तेरे पास भी कुछ है ?"

लड़के ने कहा--"पाँच अशर्फियाँ हैं !"

"कहाँ हैं ?" लड़का मख़ौल कर रहा है, यह समझकर डाकुओं के सरदार ने उसके पास पहुँचकर प्रश्न किया।

"इस गुदड़ी में।" लड़के ने उसी निर्भीकता से उत्तर दिया।

सरदार ने सरसरी तौर से गुदड़ी को टटोला और कुछ न पाकर कहा-"मज़ाक कर रहा है ?"

"नहीं, मैं सच कहता हूँ। सीवन उधेड़ कर देखिए।"

सींवन उधेड़ी गई। लड़के की बात सच निकली।

सरदार ने कहा—"तू बड़ा नादान है। यदि तू न बताता तो इन अशर्फियों का पता हमें किसी तरह नहीं लग सकता था।"

लड़के ने उत्तर दिया—"मेरी माँ ने चलते समय कह दिया था कि कितनी ही विपत्ति पड़े, पर झूट न बोलना।"

बच्चे की उस बात का सरदार पर बहुत प्रभाव पड़ा। सब यात्रियों का

धन वापस करते हुए उसने कहा—"यह लड़का मेरा गुरु है। यह छोटा बच्चा अपनी माँ की आज्ञा का पालन करने में ऐसा सावधान है। और एक मैं हूँ कि बुड्ढा होने को आया, और अब तक उस मालिक की आज्ञा का पालन नहीं करता, जिसने मुझे दुनिया में भेजा है।"

सचाई का पालन हम अपने दैनिक जीवन में कितना करते हैं, इसका ठीक-ठीक पता अपनी प्रतिदिन की बात-चीत की स्वयं आलोचना करने पर लग सकता है। "ओ हो! आज जैसी गर्मी कभी नहीं पड़ी।" "इतनी वृष्टि तो कभी हुई ही नहीं।" "इसके जोड़ का घोड़ा संसार भर में नहीं है।" इस प्रकार किसी वस्तु को सर्वोत्कृष्ट या सर्वोत्तम कह डालना हमारे लिए साधारण बात है। पर क्या हमारा इस प्रकार का कथन सचाई की परिधि में आ सकता है? क्या वस्तुतः हम यह विश्वास नहीं करते, कि संसार में किसी वस्तु के लिए सर्वोत्तम होने का प्रमाणपत्र दे देना सत्य नहीं है?

मानव-जाति आडम्बर से घृणा करती है। वह निष्कपट और सरल सचाई से प्रेम करती है। फिर भी हम दूसरे के भय से, या इस उद्देश्य से कि किसी को बुरा न लगे, बातों को घुमा-फिराकर कहते हैं। यह भी देखा जाता है, कि मन में कुछ और भाव है, पर हम अपने हावभाव से, सर्वथा दूसरा भाव प्रकट करने की चेष्टा करते हैं। जिस विषय में हमारा ज्ञान शून्य के बराबर होता है, उसके प्रति हम प्रायः ऐसा भाव दिखाते हैं मानो उसके मर्मज्ञ हैं। क्या हमारी ये चेष्टाएँ हमारे असत्य को प्रकट नहीं करतीं?

प्रयाग के प्रख्यात हार्मोनियम-मास्टर श्रीयुत किरणकुमार मुखोपाध्याय को कौन नहीं जानता? उन्होंने हार्मोनियम जैसे अपूर्ण बाजे को सितार के समान पूर्ण बाजा सिद्ध कर दिया है। प्रयाग के गत 'अखिल भारतीय संगीत परिषद्' के अधिवेशन के समय उन्होंने एक बड़ा अद्भुत चमत्कार दिखलाया था। उन्होंने संगीत-विशेषज्ञों को चार दलों में विभक्त करके अपने चारों ओर कुछ दूरी पर बैठाया, और स्वयं बीच में बैठकर बाजा बजाया।

समाप्ति पर विशेषज्ञों से पूछा गया कि कौन-सा राग बजा था, तो चारों दलों का निर्णय परस्पर विरुद्ध था। और मजा यह कि प्रत्येक दल अपने निर्णय का पूर्ण समर्थक था। उनमें से प्रत्येक को बाजे में से पृथक् स्वर-लहरी निकलती प्रतीत हुई थी। "आपको हार्मोनियम पर इतना अधिकार किस प्रकार हुआ ?" इस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने दोनों हाथ दिखला दिये। दाहिने हाथ की अँगुलियाँ—जिनसे रीड बजाये जाते हैं—अकड़कर सीधी हो गई हैं, और बायें हाथ की अँगुलियाँ—जिनसे पंखा चलाया जाता है—मुड़कर त्रिकोण बना रही हैं। अपने विषय पर पूर्ण अधिकार पाने की साधना में उन्होंने अपने जीवन का सम्पूर्ण समय लगा दिया। जिस विषय को अपना-लिया, उसे आत्मसात् करने में उन्हें सफलता मिल गई। पेशे की सचाई का यह एक सजीव उदाहरण है। जो काम तुम्हारा है, उसे सचाई के साथ करो। उसके छोटे-से-छोटे अंग की भी उपेक्षा न करो। यही सफलता का रहस्य है।

प्रतिष्ठित लेखक अपनी किसी कृति को तब तक छपने के लिए नहीं भेजते, जब तक उसके सम्बन्ध में उन्हें पूर्ण संतोष नहीं हो जाता। विश्व-कवि रवीन्द्र नाथ से किसी ने प्रश्न किया कि आप किस प्रकार लिखते हैं। उत्तर में उन्होंने अपनी पांडुलिपि के कुछ पन्ने दिखा दिए, साथ ही उन्होंने बतलाया कि, वे एक बार अपने विचारों को लिपिबद्ध कर लेते हैं। कुछ दिनों बाद उसे फिर देखते हैं और उसमें आवश्यक संशोधन, परिमार्जन और परिवर्द्धन करते हैं। कुछ दिनों बाद उसे फिर देखते हैं, और फिर सुधार करते हैं। इस क्रम में उन्हें अपनी रचना को कई बार नए सिरे से लिखना पड़ता है। जब आत्मसंतोष हो जाता है तभी वे उसे प्रकाशनार्थ भेजते हैं। उर्दू के प्रसिद्ध कहानी-लेखक मिर्जा आजीमबेग चगतई की भी यही रीति थी। उनकी एक पांडुलिपि का ब्लाक छपा था जिसमें कई प्रकार की स्याहियों में इतने संशोधन किये गये थे कि, सामान्य पाठक के लिये उस का पढ़ना एक समस्या थी! आचार्य महावीरप्रसाद

'सरस्वती' का संपादन करते समय कितना परिश्रम करते थे, यह उनके द्वारा संशोधित लेखों को देखने से ज्ञात होता है। जिनकी कुछ प्रतियाँ 'नागरी-प्रचारिणी-सभा' काशी में सुरक्षित हैं। 'सरस्वती' में किसी लेख को छपने के लिए वे तभी देते थे जब उसके विषय में उन्हें पूर्ण संतोष हो जाता था। अपनी इस सचाई के आधार पर वे हिन्दी के आचार्य पद के अधिकारी हो गए और हिन्दी के लिए अल्पकाल में ही इतना कार्य कर गए जितना कोई बड़ी-से बड़ी संस्था सौ वर्ष में कर पाती।

जोना चिकेरिंग ने जिस दिन से पियानो बनाना प्रारम्भ किया, उसी दिन से वह अपनी सचाई के लिए प्रसिद्ध हो गया। पियानो-सम्बन्धी किसी छोटी-सी बात की भी वह कभी उपेक्षा नहीं करता था। वह बारीकी और ज्ञान की तुलना में समय और परिश्रम को अधिक महत्त्व नहीं देता था। अल्प समय में ही उसकी छोटी-सी दुकान एक बड़े कारखाने के रूप में परिवर्त्तित हो गई। फिर उसे ऐसा बाजा बनाने की धुन सवार हुई जिससे अल्प प्रयास से ही मधुर राग निकाला जा सके, साथ ही जाड़े, गर्मी और बरसात में जिसके स्वर एक-से मधुर बने रहें! जीवन की अन्तिम घड़ियों तक वह पूर्ण सचाई के साथ अपनी साधना में लीन रहा। उसने अपने काम में किसी से सहायता नहीं माँगी। उसे अनियमितता जरा भी सह्य नहीं थी। फलतः उसके समस्त प्रतिद्वन्द्वी उससे हार मान गए थे।

एक प्रसिद्ध लेखक का कथन है—'जो कुछ ठीक है उसे अपनी पूरी सावधानी, शक्ति और विश्वास के साथ करो। ऐसी कोई तराज़ू नहीं है जिसके द्वारा कर्त्तव्यों के प्रति बरती हुई अपनी-अपनी विश्वसनीयता को हम तौल सकें अथवा यह निर्णय कर सकें कि भगवान् की सृष्टि में उसकी अपेक्षाकृत विशेषता कितनी है। जो बात नितान्त साधारण प्रतीत होती है, वह किसी के लिए जीवन-मरण का प्रश्न भी बन सकती है।

स्वावलम्बन

महामति गिबन का कथन है कि "प्रत्येक मनुष्य को दो प्रकार की शिक्षाएँ मिलती हैं--एक तो वह जिसे वह दूसरों से ग्रहण करता है, और दूसरी वह जिसे वह अपने आप पाता है। इन दोनों शिक्षाओं में से दूसरे प्रकार की शिक्षा बहुत महत्त्व रखती है।" वास्तव में यह कथन बहुत सत्य और मार्मिक है। इसी प्रकार एक दूसरे विद्वान् ने कहा है कि—"मनुष्य की शिक्षा का वही भाग सर्वोत्तम होता है, जिसे वह अपने आप प्राप्त करता है।" और यह ठीक भी है। विद्वानों व महापुरुषों के जीवन-चरित्र यही कहते हैं। संसार में जो मनुष्य प्रसिद्धि व सफलता प्राप्त कर चुके हैं, उन्होंने स्वयं ही अपने आपको शिक्षा दी है। यद्यपि ऐसा करने में उन्हें बहुत ही परिश्रम और उद्योग करना पड़ा है, परन्तु ऐसा करने से उन्हें जो ज्ञान प्राप्त हुआ, वह उनकी निज की सम्पत्ति हो गई। वह ज्ञान चिरस्थायी हो गया। इसके विपरीत दूसरों से ज्ञान प्राप्त करने वाले पुरुष कभी उतनी सफलता प्राप्त नहीं कर सके। कारण यह है कि दूसरों से ग्रहण किया हुआ ज्ञान उतना टिकाऊ नहीं रहता। वह जितनी तेजी से ग्रहण किया जाता है, उतनी ही तेजी से बाहर भी निकल जाता है। दैनिक जीवन में हम इस सत्य का अनुभव प्रायः प्रतिदिन किया करते हैं।

अपने आप अपने को शिक्षा देने की, अथवा अपनी सहायता स्वयं करने की यह भावना ही 'स्वावलम्बन' है। हमें यह कहावत सदैव याद रखनी चाहिये—"ईश्वर उसी की सहायता करता है, जो अपनी सहायता स्वयं करता है।" परमुखापेक्षी सदैव निर्बल रहता है। जिसे इस

महत् सत्य का बोध हो जाता है, उसके लिए सफलता का जीवन-द्वार खुला रहता है। उसे जीवन में असफलता के दर्शन कभी नहीं हो सकते। अपना काम आप करने से हमारे अन्दर आत्म-विश्वास पैदा होता है। यदि हम असफलता के भय के कारण दूसरों से सहायता माँगने लग जाते हैं, तो अपने ऊपर से हमारा विश्वास उठ जाता है। इससे दो हानियाँ होती हैं—एक तो यह कि हमारी अन्तश्चेतना निर्बल हो जाती है, और दूसरी यह कि दूसरों की सहायता से प्रायः काम सुधरने के बजाय और बिगड़ जाता है। यह नहीं, तो इतना तो होता ही है कि वह काम, जो दूसरों की सहायता से किया जाता है, हमारे मन के ठीक अनुसार नहीं होता। आप तो जानते ही होंगे कि--'आप काज, महा काज।' आश्चर्य है कि हम तब भी दूसरों की सहायता की आवश्यकता का प्रत्येक काम में ही अनुभव करते हैं। यह हमारी बहुत बड़ी कमजोरी है। पाश्चात्य देशों में अभिभावक गण अपने बच्चों को अपनी सहायता स्वयं ही करने की शिक्षा देते हैं। आगे एक कहानी दी जाती है, जो स्वावलम्बन की भावना को बहुत अधिक स्पष्ट करती है।

किसी पाठशाला की एक अध्यापिका एक कमरे से होकर जा रही थी। उसने देखा कि एक छह या सात वर्ष की बालिका स्टूल के ऊपर खड़ी होकर एक चित्रों की पुस्तक को लेने का प्रयत्न कर रही है। चित्रों की पुस्तक एक रैक पर रक्खी थी, जो दीवार में लगा हुआ था। बालिका छोटी थी, इस कारण उसका हाथ उस रैक पर रक्खी हुई पुस्तक तक नहीं पहुँच रहा था। इसी समय उस बालिका ने अपनी अध्यापिका को देखा और उससे उस पुस्तक को उठा देने की प्रार्थना की।

अध्यापिका मुस्कराती हुई आगे बढ़ी, परन्तु अचानक ही उसे कुछ विचार आया और वह रुक गई और गम्भीर भाव से कहने लगी—"बच्ची, खेद की बात है कि तुम इतने साधारण से कार्य के लिए मेरी सहायता चाहती हो। यदि तुम ज़रा प्रयत्न और करो तो पुस्तक पाने में सफल हो जाओगी।"

उस नन्हीं बालिका के हृदय पर इन बातों का बहुत प्रभाव पड़ा। वह बोली—"अच्छा, यदि मैं गिरने लगूँ, तो आप मेरी रक्षा करेंगी न ?"

मन के भावों को दबाती हुई अध्यापिका ने उत्तर दिया—"हाँ-हाँ क्यों नहीं ?"

बालिका निर्विघ्न व निर्भय हो गई। अब की वार उसने अपनी एड़ी ऊँची कर पुस्तक लेने का प्रयत्न नहीं किया वरन् वह उस स्टूल पर ही उछली और पुस्तक को पकड़ लिया, परन्तु ऐसा करने में स्टूल हिल गया और बालिका नीचे गिरने लगी। पास खड़ी अध्यापिका ने तत्काल ही उसे पकड़ लिया और गिरने से बचा दिया। बालिका अपनी सफलता पर प्रसन्न हो पुस्तक लेकर बेंच पर बैठ गई और चित्र देखने लगी।

एक दूसरी अध्यापिका भी दरवाजे के पास खड़ी यह घटना देख रही थी। उसने पास आकर पहली अध्यापिका से पूछा कि उसने स्वयं ही वह पुस्तक उतार कर बालिका को क्यों नहीं दे दी। पहली अध्यापिका ने उत्तर दिया—"बहिन, यदि मैं स्वयं वह पुस्तक उतार कर बालिका के हाथ में पकड़ा देती तो बालिका का आत्म-विश्वास नष्ट हो जाता। उसे स्वयं ही पुस्तक उतारने को कह कर मैंने उसकी स्वावलम्बन की भावना को पुष्ट किया है। यद्यपि ऐसा करने में उसे थोड़ा कष्ट भी हुआ है, परन्तु भविष्य में कितनी भी कठिनाइयों के बीच इस बच्ची को दूसरों की सहायता की आवश्यकता कभी नहीं पड़ेगी। यह अपनी सहायता स्वयं ही कर लेगी।

आप स्वयं अनुमान कर सकते हैं कि अध्यापिका की बातों में कितना अधिक सत्य है।

सेमुएल स्माइल्स एक स्थान पर लिखते हैं—

"जिन जातियों में स्वावलम्बन का जोश रहा है, उन्होंने सदैव ही उन्नति की है। इसका उदाहरण अंगरेज जाति है। अंगरेजों में ऐसे मनुष्य प्रचुरता से मिलेंगे, जो अपने उद्योग और पुरुषार्थ के बल पर कार्य करना

पसन्द करेंगे। छोटी-छोटी बातों के लिए परमुखापेक्षी होना इस जाति ने जैसे सीखा ही नहीं।" हमारे ऋषियों ने भी स्वावलम्बन को मानव का सर्व-श्रेष्ठ गुण कहा है। हमारी उन्नति का इतिहास हमारे स्वावलम्बन का इतिहास है। वह स्वावलम्बन हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्यापक था।

'सांख्य दर्शन' के रचयिता कणाद मुनि के सम्बन्ध में एक कहानी प्रसिद्ध है। वे एक ओर जहाँ प्रकाण्ड मनस्वी और तत्त्वदर्शी थे, वहाँ दूसरी ओर प्रथम कोटि के स्वावलम्बी भी थे। उनका सम्पूर्ण समय तत्त्वचिन्ता में व्यतीत होता था। फलतः उनकी आवश्यकताएँ परिमित थीं। एक मृग-छाला, कुछ तालपत्र और क़लम-दवात यही उनकी गृहस्थी थी। ऋषि-पत्नी सदा साथ रहती थीं। भ्रमण करते-करते जहाँ जी में आया, वृक्ष के तले आसन जमा दिया और तत्त्व-चिन्ता में निमग्न होगए। जब ध्यान छूटा और भूख ने सताया, तब पास-पड़ोस के किसी ऐसे खेत में जा पहुँचे जिसकी फ़सल कट चुकी थी, सीला भी बीना जा चुका था, ढोर भी चर चुके थे; और इस प्रकार किसान अपना सम्पूर्ण भाग प्राप्त कर चुका था। मुनि उसी खेत में से अन्न का एक-एक दाना चुना करते और इस प्रकार जो संग्रह हो पाता उसीसे उदरपूर्ति करते। इस प्रकार कणों को खाकर जीवित रहने के कारण ही उनका नाम 'कणाद' पड़ गया था।

एक बार वे भ्रमण करते किसी राजा की राजधानी में पहुंचे और वहाँ एक बाग़ में आसन जमा कर तत्त्व-चिन्ता में लीन हो गए। राजा ने यह वृत्तान्त सुना तो वह बहुत-सी सामग्री लेकर सेवा में उपस्थित हुआ और मुनि से प्रार्थना की कि वे उस भेंट को स्वीकार कर लें। मुनि ने उत्तर दिया—"इस द्रव्य की मुझे आवश्यकता नहीं, इसे ग़रीबों में बँटवा दीजिये।" राजा ने फिर प्रार्थना की—"महाराज, आप से बड़ा ग़रीब मुझे दूसरा नहीं दीखता।" ऋषि फिर हँस कर बोले—"मैं ग़रीब नहीं हूँ। मैं वही भोजन करता हूँ, जो स्वयं चुन लाता हूँ। मैं स्वावलम्बी हूँ। दूसरे की सहायता लेने पर उसकी

प्रशंसा करनी पड़ती है, और इस तरह अपनी आत्मा का हनन करना होता है; अन्यथा उपकारी के उपकार से उऋण नहीं हो सकते। यह सब झंझट मेरे मन का नहीं है।" यह कहकर उन्होंने अपना आसन उठाया और उस राजा के राज्य की सीमा से बाहर हो गए।

इस बात की पुष्टि के लिए अधिक उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं है। हमारा सम्पूर्ण इतिहास उदाहरणों से भरा पड़ा है। हमें ऐसे महानुभावों के जीवन-चरित्रों से शिक्षा ग्रहण करें।

जीवन के अन्य व्यापारों के सम्बन्ध में जो सत्य है, वही शिक्षा के विषय में भी सत्य है। पाठशाला, कालिज और विश्व-विद्यालय इस सम्बन्ध में हमारी सहायता एक सीमा तक ही कर सकते हैं। शास्त्रकार ने कहा है कि विशाल संसार और लोकव्यवहार मनुष्य के लिए एक सजीव और चिरस्थायी पाठशाला है। इसमें पढ़कर हमें पूर्णता प्राप्त होती है। वहाँ मनुष्य स्वयं ही गुरु है और स्वयं ही शिष्य है। दूसरों के कहने से नहीं, बल्कि स्वयं ही संसार की प्रत्येक वस्तु का तत्त्व ग्रहण करने का प्रयास करो। और इस प्रकार अपनी योग्यता की सीमाएँ स्वयं ही निर्धारित करो। उस में दूसरों के कुछ भी कहने-सुनने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। जब अपनी शिक्षा अपने आप ही प्राप्त कर लोगे, जब संसार का अनुभव तुम्हारा ही अनुभव होगा—दूसरों का जूठा न होगा—तब तुम्हारी शिक्षा पूर्ण होगी; तब तुम विद्वान् और ज्ञानवान् कहलाने के अधिकारी बन सकोगे।

हम देखते हैं कि हम जो ज्ञान अपने परिश्रम द्वारा प्राप्त करते हैं; उस पर हमारा पूर्ण अधिकार हो जाता है। अपने आप जानी हुई बातें हमारे मस्तिष्क में पूरी तरह घुस जाती हैं, और आयुपर्यन्त हमें नहीं भूलतीं। गणित के प्रश्न करते समय प्रायः आपने अनुभव किया होगा, कि जिस प्रश्न को हम बहुत कठिनाई से व बहुत काफ़ी समय के बाद, विना किसी की मदद के हल कर लेते हैं, वह प्रश्न हमें जीवन भर याद रहता है; और

जो प्रश्न हम हल न होने पर अपने शिक्षक या अपने साथी की मदद से समझते हैं, वे बहुत शीघ्र ही दिमाग से उतर जाते हैं। जो बातें हम किसी के निर्देश किये विना ही सीखते हैं, वे बातें हमें सफलता दिलाने में बहुत सहायक होती हैं। उन्हें यदि हम सफलता की सीढ़ियाँ कहें तो अत्युक्ति न होगी।

अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि अपने आप ज्ञान प्राप्त करने का सद्‌गुण अपने अन्दर किस प्रकार उत्पन्न किया जाय? इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि इस सद्‌गुण के लिए हमें दृढ़ उद्योग की आवश्यकता होगी। चाहे हमारे पास कितनी ही ज्ञानवर्द्धक पुस्तकें हों और कितनी ही सुविधाएँ हों, परन्तु जब तक हमें दृढ़ उद्योग करने का गुण न होगा, तब तक ये सब साधन व्यर्थ रहेंगे। अतः हमें दृढ़ उद्योगी होना आवश्यक है।

दृढ़ उद्योग के पश्चात् हमारे अन्दर अवसर को पहचानने और उसका सुन्दर उपयोग करने का गुण भी होना चाहिये। यदि हमारे अन्दर दृढ़ उद्योग करने का भाव तो रहा, परन्तु उपयुक्त अवसर पहचानने और उसके सदुपयोग करने का गुण न हुआ, तो हमारा दृढ़ उद्योग करना ही व्यर्थ जायगा। इस कारण हमारे अन्दर इस गुण का भी होना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में हम पीछे बहुत कुछ कह आए हैं।

उदाहरण और शिक्षा ग्रहण करने के हेतु श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के बचपन की एक घटना ले लीजिये। वे अपने पिता के साथ अपने ग्राम से कलकत्ता जा रहे थे। मार्ग में उन्हें एक फर्लाङ्ग का पत्थर मिला। उस पर अँग्रेजी में एक का अङ्क अङ्कित था। विद्यासागर ने अपने पिता से पूछा कि उस पत्थर पर अँग्रेजी में क्या लिखा है?

पिता ने बतलाया कि वह फर्लाङ्ग का पत्थर है और उस पर अँग्रेजी में 'एक' लिखा हुआ है। तीव्र बुद्धि विद्यासागर ने उसे याद कर लिया, तथा जब दूसरा फर्लाङ्ग का पत्थर आया तो उन्होंने स्वयं ही अनुमान कर लिया, कि यह अँग्रेजी का अङ्क अवश्य ही दो (२) है; क्योंकि एक के बाद

दो आता है। इस प्रकार मार्ग में ही उन्होंने अँग्रेजी के सब अंक सीख लिए, तथा कलकत्ता पहुँचते ही पिता को सब अङ्क लिख कर दिखा दिये। पिता इस पर बहुत प्रसन्न हुए तथा उनको प्रतिदिन अँग्रेजी पढ़ाने लगे।

स्वयं शिक्षा प्राप्त करने का यह एक सुन्दर उदाहरण है। वस्तुतः यह कार्य उतना कठिन नहीं है, जितना हम समझते हैं। यदि प्रयत्न करें तो हम भी स्वयं को शिक्षा दे सकते हैं। इसके लिए हम दृढ़ उद्योग द्वारा अपनी शक्तियों का विकास करें और अपने ऊपर विश्वास करें। शिक्षक अथवा माता पिता तो केवल हमारे मार्ग-प्रदर्शक हैं। वे उपाय बताते और उत्साह दिलाते हैं। उसके बाद तो हमें स्वयं अपने मार्ग पर अपनी सहायता से चलना है।

मानसिक विकास के लिए जो कुछ कहा गया है, वही शारीरिक विकास के लिए भी कहा जा सकता है। जिस प्रकार मानसिक शिक्षा के लिए छोटी-छोटी पाठशालाओं से लेकर विश्वविद्यालयों तक अनेक संस्थाएँ होती हैं, उसी प्रकार शारीरिक विकास के लिए अखाड़े और व्यायामशालाएँ होती हैं। परन्तु जिन पहलवानों ने अपने शारीरिक बल और पराक्रम से संसार को आश्चर्य चकित कर दिया है, उनमें से ऐसा शायद एक भी न मिलेगा, जो नियमित रूप से किसी अखाड़े या व्यायामशाला का शिक्षार्थी रहा हो। प्रोफ़ेसर राममूर्ति की व्यायाम-पद्धति का अनुशीलन जिन्होंने किया है या जो विश्व-विख्यात पहलवान गामा से एक बार भी मिले हैं, उन्हें ज्ञात है कि इन दोनों दिग्गजों ने अपने शारीरिक बल का विकास स्वयंशिक्षा के आधार पर ही किया है। उन्होंने व्यायाम की विभिन्न प्रणालियों का न केवल अनुभव प्राप्त किया, वरन् अपने परिशीलन द्वारा ऐसी प्रणालियाँ निकाली थीं, जो उन्हें अपने लिये विशेष लाभदायक प्रमाणित हुईं। दोनोंका कथन है कि मनुष्य अपने लिए व्यायामों का निर्माण स्वयं करे, तभी वह शक्ति और सफलता प्राप्त कर सकता है। लकीर का फ़क़ीर सदा अधूरा रहता है।

सेमुएल स्माईल्स ने अध्ययन के विषय में लिखा है—"अध्ययन करते

समय दो बातें विशेषतः याद रखनी चाहिएँ--पहली तो यह कि जो कुछ सीखा जाय—वह ठीक हो, और दूसरी यह कि उसको पूरी तरह से सीखा जाय—वह अधूरी न रहने पाये।" इसी प्रकार जो कुछ भी एकाग्रचित होकर मनन किया जाय, वह किसी निश्चित उद्देश्य के लिये ही किया जाना चाहिये।"

आगे चल कर वे लिखते हैं—"आत्मोद्धार अथवा अपनी उन्नति करने में निर्णय-शक्ति, दृढ़-निश्चय और तत्परता की आवश्यकता है। इन गुणों की वृद्धि तभी हो सकती है, जब नवयुवकों में स्वावलम्बनशील होने की आदत डाल दी जाय, और जिस हद तक हो सके, उन्हें स्वयं काम करने को स्वतन्त्र कर दिया जाय। उपदेशों की भरमार और रोक-टोक से नवयुवकों में स्वावलम्बन की आदत नहीं आती। आत्म-विश्वास न होने से हमारी उन्नति में बाधा आ जाती है।"

व्यक्ति के विषय में जो सत्य है, वही समाज और देशों के विषय में भी सत्य है। आत्म-निर्भर और स्वावलम्बी देश छोटा होने पर भी ऐसे बड़े-बड़े राष्ट्रों को नीचा दिखा देते हैं, जो अपनी उन्नति और उत्थान के लिए परमुखापेक्षी होते हैं। आयरलैंड, अमेरिका और मिस्र की स्वाधीनता के उदाहरण हमारे सामने हैं। इन तीनों की स्वतन्त्रता की पारस्परिक तुलना हमें इस सिद्धान्त का ठीक-ठीक रहस्य समझा सकती है। जाति की उन्नति उसके प्रत्येक मनुष्य के व्यक्तिगत सुधार, परिश्रम, उद्योग और सचाई से मिल कर होती है। इसी प्रकार जाति-अवनति व्यक्तिगत आलस्य, विलास, स्वार्थपरता और दुराचरण का नाम है। जिन्हें हम सामाजिक कुप्रथाएँ कहते हैं, वे व्यक्ति के दुराचरण का ही सामूहिक रूप होती हैं। ऐसी कुप्रथाएँ क्या क़ानून बनाकर दूर की जा सकती हैं? हमारे देश में ऐसे प्रयोग अनेक वार किये जा चुके हैं। बाल-विवाह इस देश की एक भयावह सामाजिक कुप्रथा है। जब ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, राममोहनराय और दयानन्द सरस्वती के उद्योग इस कुप्रथा के उन्मूलन में असमर्थ प्रतीत

हुए, और महात्मा गोखले के व्याख्यानों का समाज पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ा, तब इसी की जड़ उखाड़ने के लिए सरकारी क़ानून का आश्रय लिया गया जो 'शारदा-एक्ट' के रूप में प्रकट हुआ। पर वह एक्ट भी क्या इस प्रथा को मटियामेट कर सका ? बाल-विवाह देश में फिर भी होते रहे और उनकी संख्या में कमी नहीं आई। समाज का प्रत्येक व्यक्ति जब आत्म-घात करने पर तुला हो तब सरकारी क़ानून किसे-किसे रोक सकता है ? व्यक्तिगत चरित्र ही जाति, राष्ट्र और समाज के सुधार की नींव है; बिना नींव के जो दीवार खड़ी की जायगी, वह अवश्य खोखली होगी।

इधर हमारे देश में एक और पुरानी प्रथा का पुनरुद्धार किया जा रहा है। वह प्रथा है शक्ति-पूजा की। हमारा अभिप्राय इतिहास के उन प्रसिद्ध वीरों के अनावश्यक सम्मान से है, जिन्हें हम देश और समाज का त्राता मानते हैं। विक्रमादित्य को हुए दो सहस्र वर्ष व्यतीत हो गए, राम-राज्य तो उससे भी पुरानी वस्तु है। आज हम विक्रम की शताब्दी मना कर और रामराज्य के दिवा-स्वप्न देख कर क्या सिद्ध कर रहे हैं ? यही न कि हमारे मन में यह धारणा घर कर रही है, कि हमारा कल्याण तभी होगा जब हमारे देश में विक्रमादित्य और राम का राज्य होगा ! इस प्रकार मानो हम ने अपनी स्वावलम्बन की भावना को दो ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम पर गिरवीं रख दिया है। पूर्व वीरों का सहारा ढूँढ़ना मानो उनकी शक्ति की पूजा करना है। इसका फल वैसा ही अकल्याणकारी होगा, जैसा केवल लक्ष्मी की उपासना करने का होता है। जातियों में फैलाने के लिए सर्वोत्तम विचार स्वावलम्बन का है। राष्ट्र के बच्चे-बच्चे को शक्ति-पूजा की मोहनिद्रा से निकाल कर, दैवी सहायता की आत्मवंचना से दूर करके, स्वावलम्बी बनने की शिक्षा दीजिए, तब इनका उद्धार होगा—महामन्त्रों के अखण्ड पाठों से नहीं।

स्वावलम्बी व्यक्ति दूसरों के जीवन और कार्यों पर अनिवार्य रूप से

प्रभाव डालता है और वह प्रभाव स्थाई होता है। पाठशालाएँ और विद्यालय तो उन्नति की केवल प्रारम्भिक श्रेणी की शिक्षा देते हैं। घर, रास्ता, बैंक, खेत, कारखाने और जितने भी स्थान ऐसे हैं जहाँ मनुष्य का गमनागमन रहता है, वहाँ जो शिक्षा मिलती है, वह वस्तुतः अधिक महत्त्व की और स्थाई होती है; क्योंकि उसका सम्बन्ध सीधा जीवन से होता है। उसमें व्यावहारिकता की प्रधानता होती है। वह कल्पना पर आधारित नहीं होती है। यह शिक्षा हमें जीवन के कर्तव्य और व्यवहार सिखलाती है। पुस्तकों-द्वारा ऐसी शिक्षा कदापि नहीं मिल सकती। किसी विद्वान् का कथन है—"पढ़कर हम ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, पर उस ज्ञान का उपयोग लोक-व्यवहार द्वारा ही होता है। पढ़े और गुने का अन्तर स्पष्ट है।" अध्ययन की अपेक्षा काम करने से निपुणता अधिक आती है, क्योंकि उसमें हमारी शक्ति और योग्यता की ठीक-ठीक तोल हो जाती है। एक उदाहरण लीजिये। जब हम कोई अच्छी पुस्तक पढ़ते हैं, या किसी अच्छे व्याख्याता का भाषण सुनते हैं, तब हमें यही लगता है कि इस पुस्तक या भाषण में क्या विशेषता है? हम भी ऐसा लिख सकते हैं और ऐसा भाषण कर सकते हैं। पर असलियत का पता तब लगता है, जब हम लेखनी लेकर लिखने बैठते हैं देखते हैं कि हमारे हाथ काँप रहे हैं, अपने भावों को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने योग्य शब्द ही ढूँढ़े नहीं मिलते; मस्तिष्क मानो कल्पना-शून्य हो गया है और विचारधारा जैसे सहसा कुण्ठित हो गई है। भाषण करने के लिए खड़े होने पर घबरा जाते हैं, हाथ-पाँव फूल जाते हैं; तालू सूख जाता है, आवाज़ भर्रा उठती है और विचार न जाने किस कोने में जा दुबकते हैं। किसी विद्वान् का यह निष्कर्ष सर्वथा सत्य है—"साहित्य की अपेक्षा जीवन, अध्ययन की अपेक्षा कार्य और जीवन-चरित्रों के स्वाध्याय की अपेक्षा प्रयोग मनुष्य की त्रुटियों को अधिक दूर करते और उसे उन्नति की ओर बढ़ाते हैं।"

फिर भी कुछ जीवन-चरित ऐसे होते हैं, जिनका ध्यानपूर्वक पढ़ जाना

सौ धार्मिक पुस्तकों के जीवन भर अनुशीलन करने से अधिक लाभदायक होता है। वे ऐसे जीवन-चरित हैं जो हमें स्वावलम्बन का पाठ पढ़ाते हैं। वे हमारा पथ-प्रदर्शन करते हैं। वे अपने पैरों पर आप खड़े होने, अपने उद्देश्य की पूर्ति में धैर्य-पूर्वक लगे रहने, अपने जीवन का स्वयं निर्माण करने लोक-कल्याण को जीवन का मुख्य लक्ष्य बनाने, सचाई पर दृढ़ रहने और अथक परिश्रम करने की शिक्षा देते हैं। वे मानों हमें खुले और साफ़ शब्दों में समझाते हैं, कि अपनी उन्नति तुम आप कर सकते हो; तुम्हारे अन्दर अपार शक्ति और मनोबल मौजूद है, तुम आत्मनिर्भर रहकर और आत्म-सम्मान की रक्षा करके ही वास्तविक प्रतिष्ठा और यश प्राप्त कर सकते हो।

यह विचार, कि महापुरुष अथवा आदर्श-जीवन किसी जाति-विशेष की सम्पत्ति है; भ्रमपूर्ण हैं। आदर्श किसी समाज और किसी वर्ग से उत्पन्न हो सकते हैं। विद्यालयों ने भी ऐसे पुरुषों को जन्म दिया है और खेतों ने भी; राजमहलों ने और झोपड़ियों ने भी। अनेक बड़े-बड़े नेता नितान्त सामान्य स्थिति के मनुष्य थे। उनके सामने अनेक कठिनाइयाँ थीं, जिन पर उन्होंने विजय प्राप्त की। इन कठिनाइयों ने उन्हें और भी प्रयत्नशील और शक्ति-शाली बना दिया। कठिनाइयाँ सहनशीलता को उत्तेजित और सोते हुए भावों को जाग्रत् करती हैं। नितान्त सामान्य स्थान में जन्म ग्रहण करके, पुरुषार्थ और उद्योग द्वारा जीवन के सर्वोच्च स्तर पर पहुँचने वाले महापुरुषों के उदाहरणों की कमी नहीं है। प्रत्येक क्षेत्र में ऐसे उदाहरण बिखरे पड़े हैं।

वर्ग और जातिगत उदाहरणों में रैदास को लीजिये जो जाति के चमार थे, पर अपने विवेक, ज्ञान और भक्ति के द्वारा भक्त-शिरोमणि बन गए थे। नाभादास ने जिनके विषय में लिखते हुए कहा है—'सब वर्णाश्रम अभिमान तजि, पदरज बन्दहिं जासु की।' स्वयं नाभादास जाति के डोम थे। भक्तों में उनकी क्या प्रतिष्ठा है, यह किसी से छिपी नहीं। कबीरदास जुलाहे के घर पैदा हुए थे और ताना-बाना बुनते-बुनते 'इड़ा-पिंगला-

सुखमन नारी के ताने-बाने की ऊहा-पोह करने लगे थे। अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि कृष्णदास शूद्र थे। रसखान, पठान और शेख (एक मुसलमान महिला) की भक्तिरस से सराबोर कविताएँ किस साहित्य-रसिक को आनन्द-विभोर नहीं कर देती? खगनिया नामक एक शूद्रा की पहेलियाँ प्रसिद्ध ही हैं—जो उन्नाव ज़िले की रहने वाली एक तेलिन थी।

दरिद्र वर्ग में से इतने उज्ज्वल रत्न निकले हैं जिनकी आभा से साहित्य, समाज, राजनीति और विज्ञान के क्षेत्र प्रदीप्त हैं। हिन्दी के सर्व-श्रेष्ठ युग्म कवि सूर और तुलसी का जन्म ऐसे निर्धन घरों में हुआ था, जहाँ भोजन का भी ठिकाना नहीं था! चाणक्य एक दीन ब्राह्मण के पुत्र थे, जिनकी प्रखर बुद्धि अन्ततः नन्दवंश के विनाश का कारण बनी। कहते हैं कि जब उन्हें पहले-पहल महानन्द के यहाँ से तिरस्कार मिला था, तब वे फटे और मैले वस्त्र पहने थे और दीन-हीन तथा परम दरिद्र दिखाई देते थे। पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के माता-पिता बड़े ग़रीब थे। विद्यासागर ने जिस परिश्रम से विद्याभ्यास किया था, वह उल्लेखनीय है। उन्हें जिस कोठरी में रहना पड़ता था, वह केवल चार हाथ लम्बी और उससे कुछ कम चौड़ी थी। वे उसी में अपने लिए भोजन बनाते, अपना सब सामान रखते, उसी में पढ़ते-लिखते और रात को पैर सिकोड़ कर सो रहते थे। अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि कुम्भनदास परम दरिद्र थे, पर साथ ही त्यागी और स्वाभिमानी भी प्रथम कोटि के थे। एक बार बादशाह ने उनकी कीर्ति सुन कर उन्हें सीकरी बुलाया। राजाज्ञा है, यह विचार कर कुम्भनदास सीकरी चले तो गये और बादशाह से भेंट की, पर बुरे मन से। बादशाह ने कुछ कविता सुनाने का आग्रह किया तो तुरन्त रच कर यह पद सुनाया—

सन्तन को कहा सीकरी सों काम।
आवत जात पन्हइयाँ टूटीं बिसरि गयो हरिनाम।
जिनको मुख देखे घिन उपजै तिनको करिबे परी सलाम॥

चलते समय बादशाह ने कुछ भेंट देनी चाही तो उसे अस्वीकृत करते हुए कह दिया कि—"आपकी सबसे बड़ी कृपा यह होगी कि आप फिर कभी मुझे दर्शन देने के लिये बाधित न करें।" चैतन्य महाप्रभु, जिनकी यशः-पताका बंगाल में घर-घर फहरा रही है, दरिद्र घर ही के थे। रामकृष्ण परमहंस के पितृकुल का भी यही हाल था। संस्कृत के प्रख्यात कोश के रचयिता बी० एस० आप्टे का बचपन भी ग़रीबी में ही बीता था। आज उनका कोश संस्कृतज्ञों के लिए परम साधन बना है। द्रोणाचार्य का वर्णन महाभारत में पढ़ा होगा। वे इतने दरिद्र थे कि अपने बच्चों को दूध भी मोल लेकर नहीं पिला सकते थे। महाराज बीरबल, महाकवि भूषण सब प्रारम्भ से अत्यन्त दरिद्र थे। महाराज रणजीतसिंह के प्रख्यात सेनापति फूलसिंह, जिन्होंने काश्मीर को विजय किया था, निर्धन परिवार की ही सन्तति थे।

व्यवसाय और और कलाकौशल के क्षेत्र में अनेक स्वावलम्बी दरिद्र से धनकुबेर बनकर एक आदर्श उपस्थित कर गए हैं। उत्तरी भारत के सब से बड़े प्रेस 'इण्डियन प्रेस, लिमिटेड' के जन्मदाता स्वर्गीय चिन्तामणि घोष एक साधरण वेतन वाले कर्मचारी थे। नौकरी से अवकाश ग्रहण करने पर उन्होंने एक छोटा-सा हैंड प्रेस मोल ले लिया था, जिसमें कम्पोजिंग, प्रिंटिंग, प्रूफ-रीडिंग से लेकर डिस्पैच व आर्डर प्राप्त करने तक का काम अकेले वे ही करते थे। उनमें ईमानदारी, सचाई, दृढ़ता और अध्यवसाय के गुण स्वाभाविक रूप से विद्यमान थे। अपने कार्य के विषय में ऐसे सावधान थे कि छपाई में प्रूफ की एक साधारण-सी भूल रह जाने पर वे सारे छपे हुए फार्म रद्दी कर देते थे, और हानि की चिंता किए बिना ही दुबारा उन्हें फिर छापते थे। यह उनकी सचाई का ही परिणाम था कि 'इण्डियन प्रेस' उनके जीवन-काल में ही देश के सर्वोत्तम मुद्रणालयों में गिना जाने लगा था। प्रयाग के दूसरे प्रकाशक लाला रामनारायणलालजी भी अपने अध्यवसाय के द्वारा 'न कुछ' से लखपती बन गए थे। कहते हैं कि उन्होंने अपने कार्य का

आरम्भ कुछ रुपयों की एक छोटी-सी पूँजी से ही किया था। बम्बई के जिस 'निर्णयसागर प्रेस' का नाम संस्कृत के प्रकाशन में प्रमाण माना जाता है, उसके संस्थापक सेठ जावजी दादाजी प्रारम्भ में नितान्त निर्धन थे। जब वे केवल सात वर्ष के थे, तभी उनके पिता का देहान्त हो गया था। इस आकस्मिक निधन से उनके परिवार पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा! उदर-पूर्ति का और कोई साधन न पाकर जावजी की माता तरकारी बेचने लगीं और उसी की अल्प आय से परिवार का येन-केन-प्रकारेण भरण-पोषण करने लगीं। जावजी जब दस वर्ष के हुए, तब २) मासिक पर एक प्रेस में नौकर हो गए। उन्हें टायप घिसने का काम सौंपा गया था। उनकी टायप-शिल्प-सम्बन्धी शिक्षा का प्रारम्भ यहीं से हुआ। कुछ वर्ष वहाँ काम करने के उपरान्त वे १३) मासिक पर 'टाइम्स आफ़ इण्डिया प्रेस' में नौकर हो गए। उसके बाद उन्हें टायप ढालने का काम मिल गया और उनका वेतन ३०) मासिक होगया। टायप ढालने का उनका ज्ञान यहाँ और बढ़ा। इस अनुभव से लाभ उठाकर उन्होंने सन् १८६४ में टायप ढालने का निजी कारखाना खोल दिया, जिसमें उन्हें अच्छी सफलता प्राप्त हुई। उन्हीं दिनों मराठी टायप ढालने का उन्होंने एक नया ढंग निकाला, जिसके कारण उनके टायप अन्य कारखानों में ढले हुए टायपों की अपेक्षा कहीं अधिक सुन्दर बनने लगे। यहीं से वास्तविक उन्नति का श्रीगणेश हुआ। उनके टायप बहुत लोकप्रिय हुए और उनकी बहुत बिक्री हुई। इस कार्य में सफलता पाकर उन्होंने 'निर्णय सागर' नाम से अपना निजी प्रेस खोल दिया। इस काम में भी उन्होंने कौशल और सचाई का पूरा प्रयोग किया। फल यह हुआ कि बम्बई-सरकार ने अपनी बहुमूल्य संस्कृत की पुस्तकें छापने के लिए 'निर्णय-सागर प्रेस' को ही दीं। साथ ही गुजराती और मराठी की स्कूली पुस्तकें भी वे ही छापने लगे। अपने प्रेस को अधिक से अधिक उपयोगी और उच्च श्रेणी का बनाने में जावजी ने कोई प्रयत्न शेष न रक्खा। अनेक नामी

विद्वानों की पुस्तकें उन्होंने स्वयं प्रकाशित कीं और उनका मूल्य भी साधारण ही रक्खा। इन्हीं कारणों से कुछ ही समय में 'निर्णय सागर प्रेस' प्रख्यात हो गया। जावजी के 'निर्णय सागर प्रेस' के सब कर्मचारियों का वेतन मिलाकर इन दिनों प्रति मास लगभग आठ हजार रुपये हैं। इसी से अनुमान किया जा सकता है कि उसने कितनी उन्नति की है।

जावजी के चरित्र में यह स्पष्टतया देख सकते हैं कि उनकी स्कूली शिक्षा कुछ नहीं थी। गुरुके पास बैठकर पढ़ने का भी उन्हें अवकाश नहीं मिला था। वे स्ववलम्बन और आत्मशिक्षण के बल पर ही इतनी उन्नति कर सके थे। वे अपने परिश्रम और सचाई द्वारा ही लोक-प्रिय बन सके थे। उनके निर्माण में न दैव का योग था, न भाग्य का और न किसी सहायक का।

अँग्रेजी पार्लियामेंट के 'हाउस आफ़ कामन्स' में ऐसे स्वावलम्बनशील व्यक्ति सदैव रहे हैं, जो उद्योगशील चरित्रों में आदर्श कहे जा सकते हैं। वहाँ की पार्लियामेंट की यह बात प्रशंसनीय है कि उसने ऐसे स्वावलम्बियों का सदैव स्वागत किया है। एक बार जब मजदूरों के सम्बन्ध में किसी नियम पर वाद-विवाद चल रहा था, तब जाजेफ़ ब्रोथर्टन ने उन कष्टों और संकटों का मार्मिक उल्लेख किया था जो उन्होंने बाल्यकाल में सहे थे, जबकि वे एक रुई के मिल में मजदूर थे। मिस्टर विलियम जेकसन का जीवन भी एक उत्तम उदाहरण है। उनके पिता एक साधारण डाक्टर थे। उनके ११ पुत्र थे जिनमें जेकसन सातवें थे। पिता की मृत्यु हो जाने के कारण जेकसन को बारह वर्ष के वय में ही जहाज़ पर नौकरी करनी पड़ी। प्रातः ६ से रात के ९ बजे तक जहाज़ पर उसे कठिन परिश्रम करना पड़ता था। कुछ दिनों बाद जहाज़ का मालिक अस्वस्थ होगया और उसने जेकसन को हिसाब-किताब के कमरे में रख दिया। जेकसन को कुछ अधिक अवकाश मिला और उससे लाभ उठाकर एक अँग्रेज़ी विश्वकोश की २६ जिल्दें कुछ रातों में ही

समाप्त कर डालीं। फिर वह व्यापार करने लगा और कई जहाजों का स्वामी हो गया। वह 'हाउस आफ कामन्स' का एक सदस्य भी रहा था।

ब्रिटिश पार्लियामेण्ट के गत चुनाव में मजदूर-दल की शानदार विजय हुई है और अब इङ्गलैंड में मजदूर-दल की सरकार स्थापित हो गई है। इस सरकार के दो प्रभावशाली अधिकारियों का संक्षिप्त परिचय प्रयाग के 'लीडर' के १६ सितम्बर १९४५ के रविवार-अङ्क में छपा है, जो स्वावलम्बी जीवन की विजय की खुले शब्दों में घोषणा करता है। परिचय इस प्रकार है—

मिस्टर हर्बर्ट मोरीसन—ब्रिटेन के नवीन मंत्रिमंडल के 'लार्ड प्रेसीडेण्ट', उम्र ५७ वर्ष। पिता पुलिस का सिपाही था। आरम्भ में 'एरेण्ड ब्वाय' (Errand Boy) रहे, फिर एक दुकान पर सहायक की नौकरी की, उसके बाद 'टेलीफ़ोन आपरेटर' हुए। संध्या के अवकाशों में 'म्युनिसिपल गवर्नमेण्ट' का अध्ययन किया, फिर 'सोशल डिमाक्रेटिक फैडरेशन' में सम्मिलित हुए। फिर 'स्वतंत्र मजदूर-दल' के सदस्य बने। १९२०-२१ में हेकनी (Hackney) के मेयर रहे। १९२३ में हेकनी की ओर से पार्लियामेण्ट में चुने गए। १९२२ में 'लन्दन काउण्टी काउन्सिल' (London county council) के सदस्य हुए और १९३४-४० में उसके नेता के रूप में प्रख्यात हुए। उन दिनों में इन्होंने लन्दन के नागरिकों के लाभ के लिए कई योजनाएँ कार्यान्वित कीं, जिनमें 'ग्रीन वेल्ट प्लान' विशेष प्रसिद्ध है।

जॉन जेम्स लासन—युद्ध मंत्री। १२ वर्ष की उम्र तक खान में मजदूरी करते रहे। मजदूरी ३ शिलिंग प्रति सप्ताह थी। गत महायुद्ध में खच्चर हाँकने का काम करते थे। २० साल तक कोयले की खानों में काम कर चुके हैं। मजूरी के पैसों में से पेट भरने से जो बचते उनसे पुस्तकें मोल ले लेते और रात-रात भर पढ़ा करते। आजकल वे ५००० पौंड प्रतिवर्ष वेतन पा रहे हैं।

धैर्य

किसान खेत जोतता है, बोता है, फ़सल को पानी देता है, समयानुसार उसकी निराई, गुड़ाई करता है। धीरे-धीरे फ़सल बढ़ती है फिर पकती है। लगभग छह महीने में एक फ़सल तैयार होती है। बाग़बानी का काम उससे भी अधिक समयापेक्षी है। माली यह भी आशा नहीं कर पाता कि उसका जमाया हुआ बीज उसे छह महीने बाद भी फल दे सकेगा। कुछ वृक्ष १०-१२ वर्ष का लम्बा समय लेकर फलते हैं। यह भी देखा गया है कि वृक्ष जितनी अधिक अवस्था पाकर फूलता-फलता है, उसकी आयु भी उतनी ही अधिक होती है। साधारण फलों के वृक्ष जहाँ ५-६ वर्ष तक फल देने के उपरान्त बेकाम हो जाते हैं, वहाँ आम और कटहल के वृक्ष कई पीढ़ियों को फल देते हैं।

जीव-जगत् में भी इसी नियम पर कार्य होता है। कुत्ता एक साल में जवान हो जाता है; घोड़ा ४-५ साल में सवारी के काम का होता है। हाथी ५० साल बाद पूरी जवानी पर आता है। कुत्ते की आयु १० वर्ष से अधिक नहीं होती है। घोड़ा तीस साल जीवित रह सकता है। हाथी शतायु होता है।

यह दृश्य जगत् का क्रम है। किसी वस्तु को दृष्टरूप में आने से पूर्व न जाने अदृष्ट में कितने समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है। विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ ने कहा—"हे भगवान्, तुम परम धैर्यशाली हो। तुम्हारे हाथ में अनन्त और असीम काम है, जिसे हम ससीम व्यक्ति कल्पना-द्वारा भी नहीं समझ पाते। तुम कुछ परमाणुओं को एकत्र करके एक सुगन्धमयी कली

के रूप में प्रस्फुटित करने के लिए धैर्यपूर्वक असीम काल तक प्रतीक्षा कर सकते हो।"

जीवन-व्यापार में सफलता प्राप्त करने के लिए धैर्य एक अनिवार्य गुण है। आप में असीम उत्साह है, आप प्रत्युत्पन्नमति हैं। पर इन सद्गुणों के रहते हुए भी यदि आप में धैर्य नहीं है, तो आपको कार्य का पूरा और अनुकूल फल प्राप्त नहीं हो सकता। पीछे के अध्यायों में, आप पढ़ चुके हैं कि किस प्रकार किसी अन्वेषण की सिद्धि के लिए अन्वेषक को धैर्यपूर्वक जीवन-भर प्रतीक्षा करनी पड़ी थी। सफलता के क्षेत्र में ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है। एक उत्तम उदाहरण हमें डाक्टर सेमुएल स्माइल्स की "सेल्फ-हेल्प" नामक पुस्तक में मिलता है जो इस प्रकार है—

"चिकनी मिट्टी से बर्तन बनाने की कला मानव-जाति को बहुत दिनों से आती थी और अनेक जंगली जातियाँ इस कला में बहुत निपुण थीं, पर ऐसे बहुत कम लोग थे जिन्हें उन बर्तनों पर चमकदार पक्की पालिश करने की विधि ज्ञात थी। एक जाति इट्रूरिया के प्राचीन निवासियों की इस कला में बहुत निपुण थी। उनके बनाये मिट्टी के बर्तनों के नमूने अजायबघरों में अब भी सुरक्षित हैं। इट्रूरिया की संस्कृति के विनष्ट हो जाने पर उस कला का भी लोप हो गया। कहा जाता है कि इट्रूरिया-निवासियों द्वारा निर्मित वे बर्त्तन इतने बहुमूल्य समझे जाते थे कि उनके लिए बराबर तोल में स्वर्ण देना पड़ता था। मूअर जाति भी इस कला में दक्ष थी और मैजोरिका-द्वीप में बसनेवाली उनकी एक शाखा यह काम किया करती थी। सन् १११५ ई० में पिसा निवासियों ने आक्रमण करके मैजोरिका पर अधिकार कर लिया और वे वहाँ की अनेक बहुमूल्य वस्तुएँ लूट कर पिसा (इटली) ले गए। लूट के उस माल में कुछ बर्त्तन भी थे। वे बर्त्तन ऐसे भव्य और आकर्षक थे कि उन्हें पिसा के चर्चों में लगा दिया गया जहाँ वे अब तक लगे हैं।

इस घटना के लगभग दो सौ वर्ष बाद इटली के कलाकारों का ध्यान उन बर्त्तनों की ओर आकृष्ट हुआ और उन्होंने उसी प्रकार के पालिशदार बर्त्तन बनाने की चेष्टा की। इन कलाकारों का नेता था लूका नाम का संगतराश। लूका अपने धैर्य और अथक परिश्रम के लिए प्रख्यात हो गया था। वह दिन भर पत्थर काटता था, क्योंकि वह कार्य ही उसकी आजीविका थी, और रात भर चित्रकला का अभ्यास करता था। उसकी आय स्वल्प थी, अतः निर्वाह कठिनाई से होता था। साथ ही उसका कार्य परिश्रम-साध्य भी था। एक बार उसे विचार आया कि किसी ऐसी चीज़ का काम सीखना चाहिए जिसमें मेहनत कम पड़े और आय अधिक हो। स्वभावतः उसका ध्यान चीनी मिट्टी की ओर आकृष्ट हुआ जो पत्थर की अपेक्षा मुलायम भी थी और उससे आमदनी भी अधिक हो सकती थी, क्योंकि चीनी के बर्त्तन उन दिनों योरप में बड़े मँहगे दामों पर बिकते थे। साथही उसने उन बर्त्तनों पर पालिश करने का ढंग भी सोच निकाला। वह चीनी के बर्त्तनों पर एक विशेष प्रकार का लेप चढ़ाकर उनको पकाता था, जिससे उनकी शोभा कई गुनी बढ़ जाती और वे अधिक टिकाऊ हो जाते थे। कुछ समय पश्चात् वह उस लेप में रंग भी मिलाने लगा जिससे उसकी कला में चार चाँद लग गए। उसके बर्त्तन योरप भर में प्रख्यात हो गए और वह मालामाल हो गया।

फ्रान्स उस समय तक बर्त्तनों की कला में बहुत पिछड़ा था। मिट्टी के जो बर्त्तन वहाँ बनते थे वे बहुत मामूली और भद्दे हुआ करते थे। १५१० ई० तक यही अवस्था थी। उसी वर्ष वहाँ एक प्रख्यात कलाकार पैलिसी का जन्म हुआ। उसने अपने पिता से शीशे का काम सीखा था। पर उसके १८ वर्ष का होते-होते, उसके पिता का व्यवसाय नष्ट हो गया और पैलिसी घर छोड़ कर आजीविका की खोज में चल पड़ा। वह प्रायः दस वर्ष तक मारा-मारा फिरता रहा।

इसके उपरान्त उसने विवाह कर लिया और वह सैन्तिनीज़ नगर में रहने

लगा। शीशे पर चित्रकारी करके वह अपनी रोटी चलाया करता था, पर इस कार्य में शक्तिभर परिश्रम करने पर भी वह परिवार के खर्च के योग्य उपार्जन नहीं कर पाता था, क्योंकि अब उसकी गृहस्थी में उसके और उसकी पत्नी के अतिरिक्त तीन बच्चे भी थे। फलतः उसका विचार किसी ऐसे काम में हाथ डालने का हुआ जिससे उसे कुछ अधिक आय हो सके। उसका ध्यान मिट्टी के बर्त्तनों पर पालिश करने की ओर गया, क्योंकि उस प्रकार के बर्त्तन बहुमूल्य समझे जाते थे। पर यह कार्य उसके लिए सर्वथा नया था और उस कार्य का कुछ अनुभव होना तो दूर, उसने किसी को मिट्टी के बर्त्तन आग में पकाते भी नहीं देखा था। इस दिशा में उसे सब कुछ स्वयं सीखना था। उसका कोई सहायक था तो आशा, उत्साह या धैर्य।

उसकी दृष्टि में इटली का बना एक कटोरा आया जो सम्भवतः लूका का बनाया हुआ था। उससे पहले भी लूका के बने कटोरे बहुतों ने देखे थे, पर उनके लिये वह एक सौदा भर थे। पैलिसी के लिए वह बात महत्त्वपूर्ण थी, क्योंकि उसने कटोरे को तब देखा था जब वह किसी नए धंधे के विषय में सोच रहा था। उस एक कटोरे ने उसके जीवन में उथल-पुथल करदी और वह रात-दिन यही सोचने लगा कि किस प्रकार वह ऐसा ही कटोरा तैयार कर सके।

वह बहुत चाहता था कि इटली जाकर उस कला का ज्ञान प्राप्त करे, पर एक तो उसके पास धन कम था, दूसरे वह गृहस्थी की बेड़ियों में बुरी तरह जकड़ा था। बाल-बच्चों को छोड़कर यदि वह चला जाए तो वे क्या खाएँगे! फलतः वह रात-दिन केवल अपने मन में उस विषय की गवेषणा करने लगा।

अनुमान के आधार पर उसने बर्त्तनों पर वैसी पालिश करने के प्रयोग प्रारम्भ कर दिए। कुछ ऐसी वस्तुओं का उसने चूर्ण तैयार किया जो उसकी समझ से उस विचित्र पालिश का अंग हो सकती थीं। फिर कुछ साधारण

मिट्टी के बर्त्तन मोल लेकर उसने उनके टुकड़े किए और अपना चूर्ण उन पर छिटक कर उन्हें आग में दिया। परीक्षा निष्फल हुई। उसने फिर परीक्षण करना चाहा और उसके लिये नए बर्त्तन, कोयला और लकड़ी आदि मोल लेने का प्रबन्ध किया। पर उसकी स्त्री बार-बार ऐसा व्यय करने को राजी न हुई। क्योंकि उसके सामने बच्चों और पति को भोजन देने का प्रश्न मुख्य था। यदि स्वल्प आय का अधिकांश भाग प्रयोगों में ही गँवा दिया जायगा तो इसका अर्थ होगा सब परिवार को भूखा मारना। पर धुन का पक्का पैलिसी किसी प्रकार अपने प्रयोग स्थगित करने को तैयार न था।

इस प्रकार दिनों महीनों और वर्षों तक उसके प्रयोग चलते रहे। इसी बीच उसे अनुभव हुआ कि वह जिस भट्टी पर काम करता है वह छोटी है और इतनी अधिक आँच नहीं दे सकती कि उसके प्रयोग सफल हो सकें। भट्टी तो खैर बन गई, पर उसके लिए ईंधन का प्रश्न उपस्थित हुआ। उस भट्टी का पेट भरने में उसे अपनी आय का बड़ा भाग प्रतिवार व्यय करना पड़ता था, जिससे उसके परिवार के भूखों मरने की नौबत आ गई।

जब दुरवस्था यहाँ तक पहुँच गई तब उसने भट्टी से काम लेना छोड़ दिया। वह फिर नए बर्त्तन लाया, उनके कई टुकड़े किये, मसाला छिटकाया और उनको लेकर एक ऐसे भट्टे पर पहुँचा जो उसके घर से एक कोस दूर था। भट्टे की आग शान्त होने पर वह फिर वहाँ गया, टुकड़े निकाले गए, पर इस बार भी सारा श्रम व्यर्थ ही गया।

इस प्रकार सालों तक पैलिसी ऐसे ही प्रयोग करता रहा। परन्तु उस का समय और परिश्रम सब व्यर्थ गया, क्योंकि उसे जरा-सी भी सफलता न प्राप्त हुई। एक बार उसने बहुत मेहनत से एक मसाला तैयार किया और बहुत से बर्त्तनों के टुकड़े कर उन पर वह मसाला चढ़ा कर, उन्हें तेज आँच से पकाया। जब भट्टी खोली गई तो उनमें से केवल एक ही ठीकरे का मसाला पिघला हुआ पाया गया। पैलिसी के लिए यही बहुत था

अबकी बार उसने अपने घर के पास स्वयं ही भट्टी बनाई। वह भट्टी बनाने वाला अकेला ही था, इस कारण उसे इस कार्य में सात-आठ माह के लगभग लग गए। फिर उसने स्वयं ही तैयार किए अपने मिट्टी के बर्त्तनों पर वह लेप चढ़ाया और पकने के लिए भट्टी पर रख दिया। अब उसने भट्टी सुलगाई और ईंधन झोंकने का काम आरम्भ कर दिया। वह सात दिन और सात रात वहीं डटा रहा और भट्टी झोंकता रहा। इस बीच उसने अन्न का एक दाना भी अपने मुँह में न डाला। उसका समय धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा और परिश्रम में ही व्यतीत हो गया, परन्तु तब भी लेप न पिघला।

पैलिसी ने अब भी धैर्य न छोड़ा। उसने एक नया मसाला नए ढंग पर तैयार किया और अपने एक मित्र से ईंधन व बर्त्तन के लिए कुछ धन उधार लेकर एक बार फिर प्रयोग करने के लिए सन्नद्ध हो गया। भट्टी सुलगा दी गई। ईंधन समाप्त हो गया, परन्तु मसाला तब भी न पिघला। पैलिसी ने लकड़ियों की तलाश की, और अपने बाग़ के बाड़े को—जो लकड़ी का बना हुआ था—भट्टी में झोंक दिया। मसाला तब भी न पिघला। अब पैलिसी ने घर का समस्त लकड़ी का सामान आग में डालना आरम्भ किया। मेज़ें, कुर्सियाँ, सन्दूक़, आलमारियाँ आदि सब अग्नि देवता की भेंट चढ़ा दी गईं। इस बार उसके अनुपम धैर्य और अखंड उद्योग की विजय हुई। गर्मी की तेज़ी से लेप पिघल गया था, तथा जब भट्टी से बर्त्तन बाहर निकाले गए, तब उन पर सफ़ेद चमकदार लेप चढ़ा हुआ पाया गया।

इस प्रकार पैलिसी का जीवन हमारे लिए धैर्य का एक अखण्ड पाठ है। जीवन में शायद ही किसी ने पैलिसी के समान कठिनाइयों और दुःखों का अनुभव किया हो। उसका घर उजड़ गया, वर्षों तक उसे बिना छत या छप्पर के रात काटनी पड़ी; खाने का ठिकाना नहीं था, कपड़े चीथड़े हो गए थे और वह स्वयं सूख कर काँटा हो गया था।

पैलिसी जैसे महान् पुरुष अपने उद्योगशील चरित्र के द्वारा हमें

परिश्रम करने का स्वभाव बनाने की व्यावहारिक शिक्षा ही नहीं देते, किन्तु वे श्रम और धैर्य का उदाहरण उपस्थित करते हुए सर्वसाधारण की कार्य-कुशलता पर बड़ा गहरा प्रभाव डालते हैं और जातीय चरित्रगठन में अच्छा योग देते हैं। वे आपत्तियों के समय में जो धैर्य दिखाते हैं, वह हमारा मार्ग सदा ही आलोकित करता रहता है।

पैलिसी के समान ही अखंड धैर्य का दूसरा उदाहरण हमें बैमवेनूटो-सैलिनी देता है। वह एक प्रसिद्ध चित्रकार और संगतराश था। पैलिसी की तरह उसके पास भी 'पृथ्वी और आकाश की ही पुस्तकें थीं।' उसने फ्लोरेन्स में पर्सियस देव की कांसे की एक मूर्ति बनाई थी, जो अभी तक उसके नाम को उज्ज्वल कर रही है। पैलिसी की ही तरह उसने भी साँचे के लिए धातु पिघलाने का प्रयत्न किया, परन्तु आँधी और मेह के कारण आँच धीमी पड़ गई। निदान उसने भी अपना लकड़ी का सामान भट्टी में झोंकना शुरू कर दिया। परन्तु अचानक ही भट्टी का ढँकना फट गया और धातु बहने लगी। यह अनुमान कर कि धातु ठीक तेजी से नहीं बह रही है, सैलिनी अपने रसोईघर से २५० के लगभग धातु के बर्त्तन उठा लाया और उन सब को उसने भट्टी में डाल दिया। फिर क्या था, धातु उचित वेग से बहने लगी और मूर्त्ति ढल गई, जो कला का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

जॉन रस्किन ने लिखा है—"धैर्य वीरता का अत्यन्त उत्तम, मूल्यवान और दुष्प्राप्य अंग है। धैर्य सब आनन्दों का और सब शक्तियों का मूल है। आशा से भी, यदि उसके साथ अधीरता हो तो, कदापि सुख नहीं मिलता।" क्या आपको यह कथन सत्य प्रतीत नहीं होता?

———

अध्यवसाय

'प्रत्येक अच्छा कार्य पहले असम्भव दिखाई देता है।'—कारलायल

'पानी जैसी चंचलता मनुष्य को ऊँचा नहीं उठने देती।'—बर्क

मनुष्य को जीवन में जो काम बार-बार करने पड़ते हैं, वे उसको उन्नति के अनेक अवसर प्रतिदिन उपस्थित करते रहते हैं। जो मनुष्य अपने मार्ग का अनुसरण दृढ़ता से करते हैं, उनके बीच की सब बाधाएँ मोम बन जाती हैं। पर शर्त यह है कि मन सच्चा हो और काम की धुन सच्ची हो।

एकलव्य की कथा प्रसिद्ध है। वह गुरु द्रोणाचार्य के पास धनुर्विद्या सीखने के लिए गया था, परन्तु शूद्र होने के कारण द्रोण ने उसे अपना शिष्य बनाना स्वीकार नहीं किया। एकलव्य को सच्ची धुन थी। वह निराश नहीं हुआ। एकान्त वन में जाकर उसने गुरु द्रोण की एक मिट्टी की मूर्ति बनाई और उसे एक वृक्ष के पास स्थापित कर दिया। फिर उसी के सामने बैठकर प्रतिदिन लक्ष्यवेध का अभ्यास करने लगा।

कुछ काल पश्चात् एक दिन गुरु अपने शिष्यों के साथ वन का भ्रमण करने को निकले। पांडवों और कौरवों को वन में एक कुत्ता दिखाई दिया जिसका मुँह बाणों से भरा था। मुँह में इतने बाण घुसे थे कि कुत्ता अपना मुँह किसी प्रकार बन्द नहीं कर सकता था। वे बाण उसके मुँह में ठीक उसी प्रकार से भरे थे, जिस प्रकार किसी बोतल के मुँह में एक कार्क फिट कर दिया गया हो। परन्तु कुत्ते के मुँह से रक्त की एक बूँद भी नहीं गिर रही थी।

शिष्यों ने उस कुत्ते को पकड़ कर गुरु के समक्ष उपस्थित किया और

उसका भेद पूछा । गुरु ने अनुभव किया कि इस वनस्थली में अवश्य कोई धनुर्विद्या-विशारद उपस्थित है जिसका लक्ष्य-वेध अचूक है । कुत्ता जिस दिशा से आया था उसी ओर गुरु-शिष्य उस कुशल धन्वी की खोज में चले और वहाँ पहुँच गए जहाँ एकलव्य एकान्त निष्ठा के साथ अपनी साधना में लीन था ।

एकलव्य की साधना, निष्ठा और उसके अध्यवसाय को देख कर सब आश्चर्य-चकित रह गए । गुरु द्रोण ने अपने शिष्यों को संबोधित करते हुए कहा--"यदि तुम्हें भी सफल लक्ष्य-वेधक बनना है तो एकलव्य से शिक्षा लो, जो केवल अपने अध्यवसाय द्वारा इतना हस्तलाघव प्राप्त कर चुका है ।"

शेरिडन जब अपना भाषण समाप्त कर चुके तो एक संवाददाता ने कटाक्ष किया--"मिस्टर शेरिडन, खेद है कि आप कभी कुशल वक्ता नहीं बन सकते ।"

शेरिडन ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया--"नहीं महाशय, मैं कुशल वक्ता अवश्य बन सकता हूँ और कुछ ही समय पश्चात् आप मेरे कथन की सचाई का समर्थन स्वयं करेंगे ।"

वारेन हेस्टिंग्ज़ पर पार्लियामेंट में जो आरोप लगाए गए थे, उनका सबसे बड़ा समर्थक यही शेरिडन था । उसके भाषणों को सुनकर प्रसिद्ध वक्ता फ़ाक्स तक ने कहा था कि ऐसा भाषण कामन्स सभा में आज तक किसी ने नहीं दिया ।

भाग्य को सब ने अन्धा माना है । पर इस कथन का विरोध करते हुए एक लेखक ने कहा है, कि भाग्य अन्धा हो सकता है, पर इतना नहीं जितना अन्धा मनुष्य होता है । वह देखता है, कि संसार में जितने महान् कार्य हुए, क्रमशः अधिकाधिक लगन और धैर्य के साथ किये जाने पर पूर्ण हुए हैं । फिर भी मनुष्य चाहता है कि उसे कोई ऐसी दैवी सहायता या संयोग प्राप्त हो जाय,जिससे उसका मनोवांच्छित कार्य अनायास ही सिद्ध हो जाय ।

जिन्हें जीवन का अनुभव है वह जानते हैं कि जिस प्रकार वायु और लहरें कुशल नाविकों के पक्ष में रहती हैं, उसी प्रकार भाग्य भी पुरुषार्थी मनुष्य के ही पक्ष में रहता है। वे प्रतिभा को अधिक महत्त्व नहीं देते। उनके मत से उद्योग करने की शक्ति का नाम ही प्रतिभा है।

उद्योग के कारण ऐसे-ऐसे विलक्षण और अद्भुत कार्य हुए हैं कि प्रतिभा की सत्ता पर सचमुच सन्देह होने लगता है। प्रसिद्ध विद्वान् वालटेर का कथन है कि प्रतिभाशाली और उद्योगी में बहुत थोड़ा अन्तर होता है। सभी मनुष्य कवि और वक्ता हो सकते हैं। प्रत्येक मनुष्य मूर्तिकार और चित्रकार बन सकता है। प्रतिभा सब में एक सी मौजूद है। सब अपनी मानसिक शक्तियों का उपयोग करने के समान रूप से अधिकारी हैं' यदि एक किसी विलक्षण कार्य को कर सकता है तो दूसरा भी उसे अवश्य कर सकता है।

संसार के सभी महापुरुषों ने यह स्वीकार किया है, कि उन्होंने जो कुछ विलक्षण कार्य किये हैं वे प्रतिभा से नहीं, अटूट परिश्रम से किये हैं। प्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटन की बुद्धि विलक्षण थी। पर उससे जब पूछा गया कि आपने इतने अनुसन्धान किस प्रकार किये, तब उसने यही उत्तर दिया कि—'उन पर निरन्तर विचार करने से'। वह अपनी धुन का पक्का था। जब वह काम से थक कर विश्राम करना चाहता था, तब एक विषय को छोड़ दूसरे पर विचार करने लगता था। उसका कथन है कि मैंने संसार की जो कुछ सेवा की है वह परिश्रम और धैर्यपूर्व विचार के द्वारा ही की है।

कारलाइल ने ठीक ही कहा है कि पहले अपने काम को ठीक से जान लो और फिर उसे करने में अपनी पूरी शक्ति लगादो। किसी कार्य की सफलता के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि रात-दिन उसी के संबंध में मनन और चिंतन किया जाय। साथ ही उसकी पूर्ति में अपनी समस्त शक्ति लगा दी जाय। टरवर ने भी अपनी सफलता का रहस्य बतलाते हुए यह स्वीकार किया है कि अटूट परिश्रम के अतिरिक्त मेरे पास और कोई उपाय नहीं था

द्विविधा बहुत बुरी है। जो व्यक्ति द्विविधा का शिकार हो जाता है वह मारा जाता है। जो एक बार किसी काम को करने का निश्चय कर लेता है, फिर अपने किसी मित्र की सम्मति से अपना विचार बदल देता है। इस प्रकार एक विचार से दूसरे विचार की ओर बढ़ता है और एक ढंग से दूसरे ढंग को ग्रहण करता है। वह सर्वथा नवीन दृष्टिकोण के चक्कर में रहता है। ऐसा लगता है कि वायु का प्रत्येक झोंका उसके विचार अपने साथ उड़ा ले जाता है और दूसरा झोंका उसे नई कल्पनाएँ और नये विचार दे जाता है। ऐसे व्यक्ति अपना पेट भले ही भर लें और दिन भले ही काट लें, पर वे कोई बड़ा काम नहीं कर सकते। वे सदा पिछड़ते ही रहते हैं और अपने स्थान से एक इंच भी आगे नहीं बढ़ सकते। इसके ठीक विपरीत उस मनुष्य की दशा है जो पहले दूर दृष्टि से अपने कर्त्तव्य का निर्धारण करता है, फिर अध्यवसाय से छोटी-छोटी कठिनाइयों को पार कर जाता है और साहस नहीं छोड़ता। वह प्रत्येक कार्य में सफलता का भागी होता है। अपने पद पर लगातार उन्नति करता जाता है।

मिस्र के पिरामिडों को जिसने देखा है, वह सोच सकता है कि ऐसे विशाल पिरामिड बनवाने में सतत परिश्रम की ही आवश्यकता थी। आगरे का ताजमहल, जो संसार के सात आश्चर्यों में से एक है, तीस वर्ष के निरन्तर उद्योग से तैयार हुआ था। चीन की वह भारी भरकम और दो हजार मील लम्बी दीवार, जिसे देखकर आज के इञ्जीनियर दाँतों तले अंगुली दबाते हैं, साल-छह महीने के उद्योगों का परिणाम नहीं है, उसके पूरा होते होते चीन के राजवंश की तीन पीढ़ियाँ समाप्त हो गई थीं और जनश्रम तो उसमें इतना व्यय हुआ था जिसका ठीक से अनुमान नहीं हो सकता। रेल, मोटर, वायुयान और ऐसे ही अन्य उपयोगी साधनों का निर्माण एक दिन में नहीं हो गया था। उनके लिये धैर्य-पूर्वक वर्षों और कभी-कभी शताब्दियों तक परिश्रम करना पड़ा था। स्वेट मार्डेन

ने लिखा है--"कौड़ी-कौड़ी करके आने वाला पैसा जल्दी से आनेवाले रुपये की अपेक्षा अधिक टिकाऊ होता है। धीरे-धीरे चलने वाला घोड़ा दौड़ के घोड़े से अधिक लम्बी और निश्चित यात्रा कर सकता है। इसी प्रकार प्रतिभा तीव्र गति से आगे बढ़ती, विचलित हो जाती और अन्त में थक जाती है। जीवन की घटनाओं और विजयों का भी यही हाल है। परिश्रमी मनुष्य की अन्तिम चोट विजय की सीमा पर पहुँचा देती है।"

एक अन्य महात्मा का कथन है—"सफलता प्राप्त करने का गुप्त रहस्य अपने विषय पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करना है। और वह अधिकार निरन्तर लगे रहने और अनुशीलन करने से प्राप्त होता है। जिन लोगों ने संसार को चमत्कारपूर्ण चीजें दी हैं, उनमें प्रतिभा की योग्यता इतनी नहीं थी जितनी कि अटूट परिश्रम करने का गुण था। उनमें अन्य स्वाभाविक सद्‌गुण भले ही कम रहे हों, पर वे अथक परिश्रमी अवश्य थे। जीवन की दौड़ में यह प्रायः देखा जाता है कि विलक्षण प्रतिभाशाली पराजित होते हैं तथा क्रमशः और लगातार उद्योग करनेवाले बाज़ी मार ले जाते हैं। इटली में एक कहावत है, जिसका आशय है कि जो धीरे-धीरे परन्तु निरन्तर चलते रहते हैं, वे बहुत आगे बढ़ जाते हैं।"

सर्वोत्तम और स्थाई उन्नति वही है जो धीरे-धीरे होती है। जो दौड़कर चलता है वह गिरता भी मुँह के बल है! उन्नति हो रही हो, भले ही उसकी गति मन्द हो, तो हमको उस पर संतोष करना चाहिए। जिन्हें धैर्य के साथ प्रतीक्षा करना आता है, वे सफलता के गुप्त रहस्य को जानते हैं। कहावत है कि धैर्य के साथ प्रतीक्षा कीजिए और आप देखेंगे कि शहतूत की पत्तियाँ रेशम में बदल गई हैं।

अमेरिका के एक पक्षी-विद्या-विशारद ने पक्षियों की विविध-चेष्टाओं के दो सौ से ऊपर चित्र बनाए थे। उस सिलसिले में उसने एक बड़ी मनोरंजक घटना का उल्लेख किया है। उसका कहना है—"मुझे कार्यवश एक दूसरे

स्थान पर जाना पड़ा। जाने के पहले मैंने अपने चित्रों को सावधानी के साथ एक सन्दूक में रख दिया और फिर वह सन्दूक एक अपने परम विश्वासी मित्र के यहाँ रख दिया। मैंने अपने मित्र से कह दिया था, कि उस सन्दूक में मेरे जीवन की सारी कमाई संचित है, अतः उसे सुरक्षित रखने में कोई कसर न रक्खी जाय। जब मैं लौट कर आया और मित्र से वह सन्दूक माँगा तब मित्र ने उसे लाकर चुपचाप मेरे आगे धर दिया। जब मैंने उसे खोलकर देखा तो सिर पर तो जैसे आसमान फट पड़ा। चूहों ने वे सारे चित्र कुतर डाले थे और अब वे किसी काम के नहीं रह गए थे। यही नहीं, उन्होंने उस चित्रशाला को अपनी प्रसव-शाला भी बना लिया था, जिससे चित्रों पर भाँति-भाँति के रंग-बिरंगे धब्बे पड़ गए थे। अभिप्राय यह कि मेरा सारा किया-धरा नष्ट हो चुका था। इस चोट से मैं इतना दुखी हुआ कि बीमार पड़ गया। चित्र मेरे सर्वस्व थे और उनके निर्माण में मैंने जीवन का सर्वोत्तम भाग व्यय किया था। इस प्रकार कई दिन मैंने घोर निराशा और दुःख में व्यतीत किये। पर उस कहावत के अनुसार कि मानसिक घावों के लिए समय सब से बड़ा मरहम है, मुझे धीरे-धीरे कुछ शान्ति मिली और मन में नूतन आशा का संचार हुआ। मैंने अपनी बन्दूक संभाली और कागज़ पेंसिल लेकर जंगल को निकल गया। उस समय मुझे विश्वास हो रहा था कि मेरे इस बार के चित्र पहले बार के चित्रों की अपेक्षा अधिक सुन्दर होंगे, क्योंकि मेरा अनुभव जो बढ़ गया है। तीन वर्ष में मैंने फिर चित्र बना लिए और मुझे उनसे संतोष भी हुआ।"

कविता और उपन्यास के क्षेत्र में बुलवर का नाम प्रसिद्ध है। पर उसका प्रथम उपन्यास ऐसा असफल रहा था और उसकी प्राथमिक कविताएँ ऐसी निम्न श्रेणी की थीं कि उसके समालोचक उसे बुरी तरह बनाया करते थे। उस समस्त व्यंग्य, हास और तिरस्कार ने बुलवर को प्रेरणा और स्फूर्ति ही दी और वह मनमारे उद्योग में जुटा रहा। फल यह हुआ कि वह थोड़े ही समय में चमक गया।

गिबन ने "रोम साम्राज्य का पतन" नामक अपना प्रसिद्ध इतिहास ग्रन्थ २१ वर्ष में निरन्तर उद्योग से पूरा किया था। वेब्स्टर का अँग्रेजी-कोष प्रसिद्ध है। उसके निर्माण में २६ वर्ष लगे थे। शब्दों और परिभाषाओं के संग्रह में उसने जिस धैर्य का परिचय दिया है, वह सराहनीय है। प्राच्यविद्यामहार्णव श्रीयुत नगेन्द्रनाथ बसु ने अपना बंगभाषा-विश्वकोश २८ वर्ष के निरन्तर परिश्रम से पूर्ण किया था। यह पूर्ण पुस्तक २२ मोटी-मोटी जिल्दों में पूर्ण हुई है। जिस समय नगेन्द्र बाबू ने यह कार्य आरम्भ किया था, उस समय उनकी अवस्था केवल १२ वर्ष की थी। उनके पास साधनों का भी अभाव था। उनका वेतन केवल इतना था कि वे उससे अपने कुटुम्ब का निर्वाह कर सकते थे। ऐसे बड़े कोश के निर्माण के लिए कितनी अधिक पुस्तकें चाहिएँ, यह सभी समझ सकते हैं। नगेन्द्र बाबू के पास इतना धन कहाँ कि वे इतनी बड़ी ग्रन्थराशि को खरीद सकते। पर वे धैर्य के साथ लगे रहे। आरंभ में विश्व-कोश की ग्राहक-संख्या इतनी छोटी थी, कि यदि और कोई होता तो वह कार्य छोड़ बैठता और बंगला विश्वकोश भी अन्य अनेक भारी-भरकम ग्रन्थों की भाँति, अधूरा ही रह जाता। पर नगेन्द्र बाबू अध्यवसायी थे विद्वानों ने कुछ समय पश्चात् उनके कार्य की सराहना की और इस प्रकार कोश की ग्राहक-संख्या में वृद्धि होती गई। सरकार ने भी इस कार्य को उपयोगी समझा और आर्थिक सहायता दी। इस लम्बे समय में नगेन्द्र बाबू अनेक बार बीमार भी पड़े और कभी-कभी तो उन्हें ऐसा लगा कि इस कार्य को अधूरा ही छोड़ जाना होगा। ऐसे अवसर पर उन्होंने अपने मित्रों से निम्न शब्द कहे थे जो उनकी मनोवस्था के ठीक अनुकूल थे "मुझे इस बात का बड़ा दुःख है कि मैं अपने संकल्प को पूरा किए विना ही जा रहा हूँ।" पर अन्ततोगत्वा उन्होंने इस कोश को पूरा कर डाला। इस के लिए उन्हें पचास हजार पुस्तकें देखनी पड़ीं और कुल मिलाकर डेढ़ लाख रुपया व्यय हुआ था। नरेन्द्र बाबू से पूर्व भी कुछ विद्वानों ने इस

प्रकार का कोश तैयार करने की योजनाएँ बनाई थीं, पर वे अध्यवसाय के अभाव से खटाई में ही पड़ी रह गईं।

हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कोश 'हिन्दी-शब्द-सागर' की रचना में भी उसके प्रधान संयोजक और सम्पादक बाबू श्यामसुन्दरदास को कितना परिश्रम करना पड़ता था, उसका लेखा बाबू साहब के ही शब्दों में इस प्रकार है :—

"शब्द-संग्रह करने के लिए जो पुस्तकें चुनी गई थीं, उन पुस्तकों को सभासदों में बाँटकर उनसे शब्द-संग्रह कराने का सभा का विचार था। बहुत से उत्साही सभासदों ने पुस्तकें तो मँगवाली, पर कार्य कुछ भी न किया। बहुतों ने तो महीनों पुस्तकें अपने पास रखकर अंत में ज्यों की त्यों लौटा दीं और कुछ लोगों ने पुस्तकें भी हज़म कर लीं। थोड़े से लोगों ने शब्द-संग्रह का काम किया था, पर उन में भी संतोषजनक काम इने-गिने सज्जनों का ही था, इससे व्यर्थ बहुत-सा समय नष्ट हो गया। पर धन की यथेष्ट सहायता सभा को मिलती जाती थी, अतः दूसरे वर्ष सभा ने विवश होकर निश्चित किया, कि शब्द-संग्रह का काम वेतन देकर कराया जाय। तदनुसार प्रायः १६–१७ आदमी शब्द-संग्रह के काम के लिए नियुक्त किये गए और एक निश्चित प्रणाली पर शब्द-संग्रह का कार्य होने लगा।

आरम्भ में कोश के सहायक सम्पादक पंडित बालकृष्ण भट्ट, पंडित रामचन्द्र शुक्ल, लाला भगवानदीन और बाबू अमीरसिंह के अतिरिक्त बाबू जगन्मोहन वर्मा, बाबू रामचन्द्र वर्मा, पंडित वासुदेव मिश्र, पंडित बचनेश मिश्र, पंडित व्रजभूषण ओझा, श्रीयुक्त वेणी कवि आदि अनेक सज्जन भी इस शब्द-संग्रह के काम में सम्मिलित थे। शब्द-संग्रह के लिए सभा केवल पुस्तकों पर ही निर्भर नहीं रही। कोश में पुस्तकों के शब्दों के अतिरिक्त और भी अनेक ऐसे शब्दों की आवश्यकता थी, जो नित्य की बोलचाल के पारिभाषिक अथवा ऐसे विषयों के थे जिन पर हिन्दी में पुस्तकें नहीं थीं। अतः सभा ने मुंशी रामलगनलाल नामक एक सज्जन को शहर में घूम-घूम

कर अहीरों, कहारों, लोहारों, सोनारों, चमारों, तमोलियों, तेलियों, जुलाहों, भालू और बन्दर नचानेवालों, मदारियों, कूचेबंदों, धुनियों, गाड़ीवालों कुश्ती-वालों, कमेरों, राजगीरों, छापेखानेवालों, महाजनों, बजाजों, दलालों, जुआ-रियों, महावतों, पसारियों, साईसों आदि के पारिभाषिक शब्द तथा गहनों, कपड़ों, अनाजों, पेड़ों, बरतनों, देवताओं, गृहस्थी की चीजों, पकवानों, मिठाइयों, विवाह आदि की रस्मों, तरकारियों; सागों, फलों, घासों, खेलों और उनके साधनों आदि के नाम एकत्र करने के लिए नियुक्त किया। पुस्तकों के शब्द-संग्रह के साथ-साथ यह काम भी प्रायः दो वर्ष तक चलता रहा। सभा ने बाबू रामचन्द्र वर्म्मा को समस्त भारत के पशुओं, पक्षियों, मछलियों, फूलों और पेड़ों आदि के नाम एकत्र करने के लिए कलकत्ते भेजा था, जिन्होंने प्रायः ढाई मास तक वहाँ रहकर इम्पीरियल लाइब्रेरी से फ्लोरा एण्ड फाना आफ ब्रिटिश इण्डिया सीरीज' की समस्त पुस्तकों में से नाम और विवरण आदि एकत्र किये थे। हिंदी भाषा में व्यवहृत होने वाले अँग्रेजी, फ़ारसी, अरबी तथा तुर्की आदि भाषाओं के शब्दों, पौराणिक तथा ऐतिहा-सिक व्यक्तियों की जीवनियों, प्राचीन स्थानों तथा कहावतों आदि के संग्रह का भी बहुत अच्छा प्रबन्ध किया गया था। पुरानी हिन्दी तथा डिंगल और बुन्देलखंडी आदि भाषाओं के शब्दों का भी अच्छा संग्रह किया गया था। इसमें सभा का मुख्य उद्देश्य यह था कि जहाँ तक हो सके, कोश में हिन्दीभाषा में व्यवहृत होने या हो सकने वाले अधिक-से-अधिक शब्द आजायँ, और यथा-साध्य कोई आवश्यक बात या शब्द छुटने न पावे। इसी विचार से सभा ने अँग्रेजी, फ़ारसी, अरबी और तुर्की आदि शब्दों, पौराणिक तथा ऐतिहासिक व्यक्तियों और स्थानों के नामों आदि की एक बड़ी सूची भी प्रकाशित करके घटाने-बढ़ाने के लिए हिन्दी के बड़े-बड़े विद्वानों के पास भेजी थी।

"सन् १९१० के आरम्भ में शब्द-संग्रह का कार्य समाप्त हो गया। जिन स्लिपों पर शब्द लिखे गए थे उनकी संख्या अनुमानतः १० लाख थी,

जिनमें से आशा की गई थी कि प्रायः १ लाख शब्द निकलेंगे; और यही बात अन्त में हुई भी। जब शब्द-संग्रह का काम हो चुका, तब स्लिपें अक्षर-क्रम से लगाई जाने लगीं। पहले वे स्वर और व्यञ्जनों के विचार से अलग-अलग की गईं और तब स्वरों के प्रत्येक अक्षर तथा व्यञ्जन के प्रत्येक वर्ग की स्लिपें अलग-अलग की गईं। जब स्वरों की स्लिपें अक्षर क्रम से लग गईं, तब व्यंजनों के प्रत्येक अक्षर की स्लिपें क्रम से लगाई गईं। यह कार्य प्रायः एक वर्ष तक चलता रहा।

जिस समय कोश के संपादन का भार मुझे दिया था, उसी समय सभा ने यह निश्चित कर दिया था कि पंडित बालकृष्ण भट्ट, पंडित रामचन्द्र शुक्ल, लाला भगवानदीन तथा बाबू अमीरसिंह कोश के सहायक संपादक बनाये जायँ, और यह लोग कोश-संपादन में मेरी सहायता करें। अक्टूबर १६०६ में मेरी नियुक्ति काश्मीर राज्य में हो गई, जिसके कारण मुझे काशी छोड़कर काश्मीर जाना आवश्यक हुआ। उस समय मैंने सभा से प्रार्थना की, कि इतनी दूर से कोश का संपादन सुचारु रूप से न हो सकेगा, अतः सभा मेरे स्थान पर किसी और सज्जन को कोश का संपादक नियुक्त करे। परन्तु सभा ने यही निश्चित किया कि कोश का कार्यालय भी मेरे साथ चलकर काश्मीर भेज दिया जाय और वहीं कोश का संपादन हो। उस समय तक स्लिपें अक्षर-क्रम से लग चुकी थीं और संपादन का कार्य अच्छी तरह आरम्भ हो सकता था। अतः १५ मार्च १६१० को काशी में कोश कार्यालय बन्द कर दिया गया और निश्चय हुआ कि चारों सहायक संपादक जम्बू पहुँचकर १ अप्रैल १६१० से वहीं कोश के संपादन का कार्य आरम्भ करें। तदनुसार पंडित रामचन्द्र शुक्ल और बाबू अमीरसिंह तो यथा-समय जम्बू पहुंच गए, पर पंडित बालकृष्ण भट्ट तथा लाला भगवानदीन ने एक-एक मास का समय माँगा। दुर्भाग्यवश बाबू अमीरसिंह के जम्बू पहुँचने के चार-पाँच दिन बाद ही काशी में उनकी स्त्री का देहान्त हो गया, जिससे

उन्हें थोड़े दिनों के लिए फिर काशी लौट आना पड़ा। उस बीच में अकेले पंडित रामचन्द्र शुक्ल ही सम्पादन-कार्य करते रहे। मई के आरम्भ में पंडित बालकृष्ण भट्ट और बाबू अमीरसिंह जम्बू पहुँचे और सम्पादन-कार्य करने लगे। पर लाला भगवानदीन कई बार प्रतिज्ञा कर के भी जम्बू न पहुँच सके, अतः सहायक सम्पादक के पद से उनका सम्बन्ध टूट गया। शेष तीनों सहायक सम्पादक उत्तमतापूर्वक सम्पादन-कार्य करते रहे।

कोश का सम्पादन आरम्भ हो चुका था और शीघ्र ही उसकी छपाई का प्रबन्ध करना आवश्यक था; अतः सभा ने कई बड़े-बड़े प्रेसों से कोश की छपाई के नमूने मँगाये। अन्त में प्रयाग के सुप्रसिद्ध इण्डियन प्रेस को कोश की छपाई का भार दिया गया। इस कार्य का आरम्भिक प्रबन्ध करने के लिए उक्त प्रेस को २,०००) पेशगी के दिये गये और लिखा-पढ़ी करके छपाई के सम्बन्ध की सब बातें तय करली गईं।

अप्रैल १९१० से सितम्बर १९१० तक तो जम्बू में कोश के सम्पादन का कार्य बहुत उत्तमतापूर्वक और निर्विघ्न होता रहा, पर पीछे इसमें विघ्न पड़ा। पंडित बालकृष्ण भट्ट जम्बू में दुर्घटनावश सीढ़ी पर से गिर पड़े और उनकी एक टाँग टूट गई, जिसके कारण अक्टूबर १९१० में उन्हें छुट्टी लेकर प्रयाग चला आना पड़ा। नवम्बर में बाबू अमीरसिंह भी बीमार हो जाने के कारण छुट्टी लेकर काशी चले आए और दो मास तक यहाँ बीमार पड़े रहे। सम्पादन-कार्य करने के लिए जम्बू में फिर अकेले पंडित रामचन्द्र शुक्ल बच रहे। जब अनेक प्रयत्न करने पर भी जम्बू में सहायक सम्पादकों की संख्या पूरी न हो सकी, तब विवश होकर २५ दिसम्बर १९१० को कोश का कार्यालय जम्बू से काशी भेज दिया गया। कोश-विभाग के काशी आ जाने पर जनवरी १९११ से बाबू अमीरसिंह भी स्वस्थ होकर उसमें सम्मिलित हो गए और बाबू जगन्मोहन वर्मा भी सहायक सम्पादक के पद पर नियुक्त कर दिए गए। दूसरे मास फरवरी में बाबू

गंगाप्रसाद गुप्त भी कोश के सहायक सम्पादक बनाए गए। जम्बू में तो पहले सब सहायक सम्पादक अलग-अलग शब्दों का सम्पादन करते थे और तब लोग एक साथ मिलकर सम्पादित शब्दों को दुहराते थे। परन्तु बाबू गंगाप्रसाद गुप्त के आजाने पर दो-दो सहायक सम्पादक अलग-अलग मिलकर सम्पादन करने लगे। नवम्बर १९११ में जब बाबू गंगाप्रसाद गुप्त ने अपने पद से स्तीफा दे दिया तब पंडित बालकृष्ण भट्ट पुनः प्रयाग से बुला लिए गए, और जनवरी १९१२ में लाला भगवानदीन भी पुनः इस विभाग में सम्मिलित कर लिए गए, तथा मार्च १९१२ से सब सहायक सम्पादन के कार्य के लिए तीन भागों में विभक्त कर दिए गए। इस प्रकार कार्य की गति पहले की अपेक्षा बढ़ गई, पर फिर भी उसमें उतनी वृद्धि नहीं हुई जितनी वांछित थी। जब मई सन् १९१० में 'अ', 'आ', 'इ' और 'ई' का सम्पादन हो चुका, तब उसकी कापी प्रेस में भेज दी गई और उसकी छपाई में हाथ लगा दिया गया। उस समय तक मैं भी काश्मीर से लौटकर काशी आ गया था जिससे कार्य-निरीक्षण और व्यवस्था का अधिक सुभीता हो गया।

१९१३ में सम्पादन-शैली में कुछ और परिवर्तन किया गया। पंडित बालकृष्ण भट्ट, बाबू जगन्मोहन वर्मा, लाला भगवानदीन तथा बाबू अमीर-सिंह अलग-अलग सम्पादन-कार्य पर नियुक्त कर दिए गए। सब सम्पादकों की लेख-शैली आदि एक ही प्रकार की नहीं हो सकती थी, अतः सबकी सम्पादित स्लिपों को दोहरा कर एक-रस करने के कार्य पर पंडित रामचन्द्र शुक्ल नियुक्त किए गए और उनकी सहायता के लिए बाबू रामचन्द्र वर्मा रक्खे गये। उस समय यह व्यवस्था थी, कि दिन भर तो सब सहायक सम्पादक अलग-अलग सम्पादन-कार्य किया करते थे और पंडित रामचन्द्र शुक्ल पहले की सम्पादित स्लिपों को दोहराया करते थे; और सन्ध्या को ४ बजे से ५ बजे तक सब सम्पादक मिलकर एक साथ बैठते और शुक्लजी

की दोहराई हुई स्लिपों को सुनते तथा आवश्यकता पड़ने पर उसमें परिवर्तन आदि करते थे। इस प्रकार कार्य भी अधिक होता और प्रत्येक शब्द के सम्बन्ध में प्रत्येक सहायक सम्पादक की सम्मति भी मिल जाती।

मई १९१२ में छपाई का कार्य आरम्भ हुआ था और एक ही वर्ष के अन्दर ९६-९६ पृष्ठों की चार संख्याएँ छप कर प्रकाशित होगई, जिनमें ८,६६६ शब्द थे।

इस अवसर पर एक बात और कह देना आवश्यक जान पड़ता है। जिस समय मैं पहले काश्मीर जाने लगा था, उस समय यही निश्चय हुआ था कि कोश-विभाग काशी में ही रहे, और मेरी अनुपस्थिति में स्वर्गवासी पंडित केशवदेव शास्त्री कोश-विभाग का निरीक्षण करें। परन्तु मेरी अनुपस्थिति में पंडित केशवदेव शास्त्री तथा कोश के सहायक सम्पादकों में कुछ अनबन हो गई, जिसने आगे चलकर और भी विलक्षण रूप धारण किया। उस समय सम्पादक लोग प्रबन्धकारिणी समिति के अनेक सदस्यों तथा कर्मचारियों से बहुत रुष्ट और असन्तुष्ट हो गये थे। कई मास तक यह झगड़ा भीषण रूप से चलता रहा और अनेक समाचारपत्रों में उसके सम्बन्ध में कड़ी टिप्पणियाँ निकलती रहीं। सभा के कुछ सदस्य तथा बाहरी सज्जन कोश की व्यवस्था तथा कार्यप्रणाली आदि पर भी अनेक प्रकार के आक्षेप करने लगे। कुछ सज्जनों ने तो छिपे-छिपे ही यहाँ तक उद्योग किया, कि अब तक कोष के कार्य में जो व्यय हुआ है, वह सब सभा को देकर कोश की सारी सामग्री उससे ले ली जाय और स्वतन्त्र रूप से उसके सम्पादन और प्रकाशन आदि की व्यवस्था की जाय। यह विचार यहाँ तक पक्का हो गया था कि एक स्वनामधन्य हिन्दी-विद्वान् से सम्पादक होने के लिए पत्र-व्यवहार तक किया गया था। साथ ही मुझे उस काम से विरत करने के लिए मुझ पर प्रत्यक्ष और प्रच्छन्न रीति से अनेक प्रकार के अनुचित आक्षेप तथा दोषारोपण किए

गए थे। इस आन्दोलन में व्यक्तिगत भाव अधिक था। पर थोड़े ही दिनों में यह अप्रिय और हानिकारक आन्दोलन ठण्डा पड़ गया और फिर सब कार्य सुचारु रूप से पूर्ववत् चलने लगा। "श्रेयांसि बहु विघ्नानि" के अनुसार इस बड़े काम में भी समय-समय पर अनेक विघ्न उपस्थित हुए; पर ईश्वर की कृपा से उनके कारण इस कार्य में कुछ हानि नहीं पहुँची।

सन् १९१३ में कोश का काम अच्छी तरह चल निकला। वह बराबर नियमित रूप से सम्पादित होने लगा और संख्याएँ बराबर छप कर प्रकाशित होने लगीं। बीच-बीच में आवश्यकतानुसार सम्पादन-कार्य में कुछ परिवर्तन भी होता रहा। इसी बीच पंडित बालकृष्ण भट्ट, जो इस वृद्धावस्था में भी बड़े उत्साह के साथ कोश सम्पादन के कार्य में लगे हुए थे, अपनी दिन पर दिन बढ़ती हुई अशक्तता के कारण, अभाग्यवश नवम्बर १९१३ में कोश के कार्य से अलग होकर प्रयाग चले गए और वहीं थोड़े दिनों बाद उनका देहान्त हो गया। उस समय बाबू रामचन्द्र वर्मा उनके स्थान पर कोश के सहायक सम्पादक बना दिए गए और कार्य-क्रम में फिर कुछ परिवर्तन की आवश्यकता पड़ी। निश्चित हुआ कि बाबू जगन्मोहन वर्मा, लाला भगवानदीन तथा बाबू अमीरसिंह आगे शब्दों का अलग-अलग सम्पादन करें और पंडित रामचन्द्र शुक्ल तथा बाबूरामचन्द्र वर्मा सम्पादित शब्दों को अलग-अलग दोहरा कर एक मेल करें। इस क्रम में यह सुभीता हुआ कि आगे का सम्पादन अच्छी तरह से होने लगा और सम्पादित शब्द भी ठीक तरह से दोहराए जाने लगे; और दोनों ही कार्यों की गति में भी यथेष्ट वृद्धि हो गई। इस प्रकार १९१७ तक बराबर काम चलता रहा और कोश की १५ संख्याएँ छप कर प्रकाशित हो गईं।

१९१८ के आरम्भ में तीन सहायक सम्पादकों ने "ला" तक सम्पादन कर डाला और दो सहायक सम्पादकों ने "वि" तक के शब्द दोहरा डाले। उस समय कई महीनों से कोश की बहुत कापी तैयार रहने पर भी अनेक

कारणों से उसका कोई अंक छप कर प्रकाशित न हो सका, जिसके कारण आय रुकी हुई थी। कोश-विभाग का व्यय बहुत अधिक था और कोश के सम्पादन का कार्य प्रायः समाप्ति पर था; अतः कोश-विभाग का व्यय कम करने की इच्छा से विचार हुआ कि अप्रेल १९१८ से कोश का व्यय कुछ घटा दिया जाय। तदनुसार बाबू जगन्मोहन वर्मा, लाला भगवानदीन और बाबू अमीरसिंह त्याग-पत्र देकर अपने-अपने पद से अलग हो गए। कोश विभाग में केवल दो सहायक सम्पादक पण्डित रामचन्द्र शुक्ल और बाबू रामचन्द्र वर्मा तथा स्लिपों का क्रम लगाने वाले और साफ़ कापी लिखने वाले एक लेखक पण्डित बृजभूषण ओझा रह गए। इस समय आगे के शब्दों का सम्पादन रोक दिया गया और केवल पुराने सम्पादित शब्द ही दोहराए जाने लगे। पर जब आगे चल कर दोहराने योग्य स्लिपें प्रायः समाप्त हो चलीं, और आगे नए शब्दों के सम्पादन की आवश्यकता प्रतीत हुई, तब सम्पादन-कार्य के लिए बाबू कालिकाप्रसाद नियुक्त किये गए जो कई वर्षों तक अच्छा काम करके और अन्त में त्यागपत्र देकर अन्यत्र चले गए।

सन् १९२४ में कोश के सम्बन्ध में एक हानिकारक दुर्घटना होगई थी। आरम्भ में शब्द-संग्रह के लिए जो स्लिपें तैयार हुई थीं, उनके ३२ बंडल कोश कार्यालय से चोरी चले गए। इनमें "विव्वोक" से "शं" तक की और 'शय" से "सही' तक की स्लिपें थीं। इनमें कुछ दोहराई हुई पुरानी स्लिपें भी थीं, जो छप चुकी थीं। इन स्लिपों के निकल जाने से तो विशेष हानि नहीं हुई, परन्तु शब्द-संग्रह वाली स्लिपों के चोरी चले जाने से अवश्य ही बहुत बड़ी हानि हुई। इनके स्थान पर फिर से शब्द एकत्र करने पड़े।"

कोलम्बस ने किसी से कहा था—"सूर्य और चन्द्र गोल हैं तो पृथ्वी भी गोल ही होगी।"

सुनने वाले ने तर्क किया—"पृथ्वी गेंद की तरह गोल है तो लटकी किसके सहारे है ?"

"सूर्य और चन्द्र किसके सहारे लटके हैं ?"

पादरियों ने एक स्वर में कोलम्बस का विरोध किया और कहा, कि इस मनुष्य की बुद्धि मारी गई है जो इञ्जील में प्रतिपादित तथ्य का विरोध कर रहा है। बाइबिल का कथन है कि आकाश एक चँदोवे की तरह है जो पृथ्वी के ऊपर तना है। वह चपटा है तब पृथ्वी गोल कैसे हो सकती है।

कोलम्बस यह सुन कर विस्मित नहीं हुआ। वह जानता था कि रूढ़िवादी लकीर के फ़क़ीर सत्य का अन्वेषण करने की परवाह कभी नहीं करते। यही नहीं, वे यथासंभव अनुसन्धानों के मार्ग में बाधाएँ उपस्थित करने का प्रयत्न करते हैं। वह यह भी समझ गया कि पादरी उसका न केवल विरोध करेंगे, उसे धर्म-विरोधी कह कर राजदण्ड दिलाने का भी प्रयत्न करेंगे। वह भाग कर सातवें चार्ल्स की शरण में पहुँचा। पर उसी बीच किसी ने रानी इज़ाबेला को सुझाया कि सम्भव है, इस नाविक का कथन सत्य हो। यदि इस समय आप उसे थोड़ी सी आर्थिक सहायता दे दें तो आपकी बड़ी ख्याति हो जायगी। साथ ही इस अपूर्व आविष्कार का श्रेय आपको भी प्राप्त होगा। रानी को बात जँच गई और उसने अपने आभूषण गिरवी रख कर कोलम्बस को सहायता दी।

वह अपने "पिल्टा" नामक जलयान पर अपनी खोज में निकल पड़ा। तीन दिन और तीन रात "पिल्टा" निरन्तर चलता रहा। ऊपर आकाश था और नीचे आकाश से बातें करने वाली लहरें। चारों ओर अनन्त जलराशि थी। ऐसे विकट समय में एक मस्तूल सहसा खराब हो गया। माँझियों ने विद्रोह करना चाहा और वे देश को लौट जाने पर ज़ोर देने लगे। परन्तु उद्योगी और दृढ़-निश्चय कोलम्बस कब हटने वाला था ? उसके जीवन का ध्येय एक काम, एक लक्ष्य और एक आशा थी। उसने साथियों

को भारत की धनराशि और हीरे-जवाहरात का लोभ दिया। केनरीज द्वीप के २०० मील पश्चिम एक स्थान पर कुतुबनुमा यन्त्र बिगड़ गया और उसकी सुई ने उत्तरीय ध्रुव को बताना बन्द कर दिया। तब उपद्रवी मल्लाहों को उसने समझाया कि ध्रुवतारा बिल्कुल उत्तर में नहीं होता। घर से २३०० मील की दूरी पर होने पर भी उसने साथियों को समझाया कि अभी तो हम १७०० मील ही चल पाये हैं, अभी साहस नहीं छोड़ना चाहिए। थोड़े समय में उसे जल पर कुछ घास तैरती हुई दिखाई दी और आकाश में कुछ पक्षी उड़ते हुए दीख पड़े। स्वप्न सत्य हो गया। १२ अक्टूबर १४४२ को पश्चिमी दुनिया में जाकर कोलम्बस ने अपना झण्डा गाड़ दिया। उसे "नई दुनिया" मिल गई।

सेमुएल ड्रू के जीवन से हम अध्यवसाय का पाठ पढ़ सकते हैं। उसके पिता दरिद्र थे पर अपनी सन्तान को सुशिक्षित बनाना चाहते थे। धनाभाव रहने पर भी वे दोनों बच्चों को स्कूल भेजते रहे। सेमुएल का बड़ा भाई मन से पढ़ता था, अतः निरन्तर उन्नति करता जाता था। पर सेमुएल का मन पढ़ने में नहीं लगता था। आठ वर्ष की अवस्था में ही उसने पढ़ना छोड़ दिया और वह डेढ़ आना रोज़ पर एक खान में मज़दूरी करने लगा। दस वर्ष का हो जाने पर उसने मोची की दूकान पर नौकरी कर ली। वहाँ उसे बहुत कष्ट मिले जिनके कारण वह काम छोड़ कर भाग जाने का विचार करने लगा। ज्यों-ज्यों उसकी अवस्था बढ़ती गई वह उपद्रवी और दुराचारी बनता गया। बागों से फल चुरा लाना, पड़ोसियों को तंग करना और राह चलते लोगों से छेड़-छाड़ करना उसका दैनिक व्यवसाय बन गया। वह चोरी भी करने लगा और अनेक उचक्कों से उसकी मित्रता भी हो गई। अन्त में १७ वर्ष की अवस्था में वह दूकान छोड़ कर भाग निकला और रात भर एक खेत में छिपा रहा? वहाँ उसे सर्दी लग गई और विवश होकर वह फिर दूकान पर लौट आया।

कुछ दिनों बाद वह एक गाँव में जाकर जूते गाँठने का धन्धा करने लगा। पर वह धन्धा बहानामात्र था जिसमें वह दिन का समय देता था। रात्रि के घण्टे वह चोरों को सहयोग देने, बिना महसूल चुकाए माल को निकालने में सहायता देने या ऐसे ही अन्य कामों में व्यय करता था। एक निकट के शहर में यह खबर फैल गई, कि एक चलता-पुर्जा आदमी बन्दरगाह पर आया है जो महसूली माल को बिना कर चुकाए जहाज से नगर पहुँचाने की व्यवस्था कर रहा है। यह सुनकर उस नगर के समस्त व्यापारी, जो ऐसे सुयोग की तलाश में थे, समुद्र-तट पर पहुँच गए। उस व्यक्ति ने जो उस कार्य का व्यवस्थापक था, अपना जहाज किनारे से कुछ दूरी पर खड़ा कर रक्खा था। उसके कुछ साथी तट पर खड़े थे जो आवश्यक संकेत करते थे; कुछ नावों पर थे जो जहाज में से माल लेकर तट पर पहुँचाते थे। अंधेरी रात थी। सेमुएल भी कुछ साथियों के साथ नाव पर था। अचानक आँधी आई और समुद्र क्षुब्ध हो उठा। तूफ़ानी लहरों के थपेड़े खाकर नावें डगमगाने लगीं। सेमुएल की नाव उलट गई और वह किसी प्रकार तैर कर किनारे लगा।

इस दुर्घटना ने सेमुएल का जीवन-प्रवाह ही बदल दिया। अब वह गम्भीर और धार्मिक हो गया। उन्हीं दिनों उसका सम्पर्क एक धर्मोपदेशक से हो गया जिसका नाम ऐडमक्लार्क था। क्षेत्र तैयार हो चुका था, उसमें बीज पड़ा और वृक्ष उत्पन्न हो गया। उसने फिर से पढ़ना-लिखना प्रारम्भ किया, और कुछ ही समय में वह बाइबिल और धर्मशास्त्र का पंडित बन गया। वह अपने उन दिनों का अनुभव लिखते हुए कहता है—'मैं जितना ही पढ़ता था, मुझे अपनी अज्ञता का अनुभव होता था, और उतना ही अधिक मैं ज्ञान-प्राप्ति के लिए लालायित होता जाता था। मैं अपने अवकाश का प्रत्येक क्षण कुछ-न-कुछ अध्ययन करने में व्यय करता था। अपनी आजीविका के लिए मैं मज़दूरी करता था, जिसके कारण मुझे

अवकाश बहुत कम मिलता था। पर मैं उसकी कमी को पूरा करने के लिए भोजन के समय का उपयोग करता था। ज्योंही मैं भोजन के लिए आसन पर बैठता, एक पुस्तक खोलकर आगे रख लेता। भोजन करता जाता और पढ़ता भी जाता। इस प्रकार उस समय में ५—६ पृष्ठ अवश्य पढ़ डालता था। 'लाक' के लिखे निबन्ध पढ़कर मेरी ज्ञान की पिपासा जाग गई थी, और मैंने नीच विचारों को छोड़कर सात्त्विक जीवन निर्वाह करने का दृढ़ संकल्प कर लिया था। जब मुझे हाथ से भोजन बनाना पड़ता था, तब मेरा रसोईघर अध्ययनशाला का काम देता था।

व्यू की लिखी अनेक पुस्तकें हैं जिनके अनेक संस्करण हो चुके हैं।

स्वेट मार्डेन ने लिखा है :—

"गतिशील पत्थर को काई नहीं लगती; काम में आने वाले लोहे पर जंग नहीं लगता। बार-बार प्रयत्न करनेवाला असफल नहीं होता। बारह वर्ष घर में नियम से प्रति दिन १ घण्टा काम करना स्कूल के चार वर्षों के अध्ययन से कहीं अच्छा है। एक अच्छा ग्रन्थ पढ़ने से मनुष्य का जीवन सुधर जाता है।"

"अपने हाथ में लिए हुए कार्य पर जमे न रहने के कारण ही असफलता मिलती है। क्या तुम एक भी ऐसा उदाहरण बता सकते हो, जहाँ सच्ची सफलता की जड़ में दृढ़ता न छिपी हो ? अमर चित्रकारों को अपनी कूँचियाँ कागज पर चलाते-चलाते क्या बरसें नहीं बीत जातीं ? अमर लेखक क्या योंही बन जाते हैं ? क्या उन्होंने बरसों अभ्यास के बाद अपनी रचना पूर्ण नहीं की है ? जिस समय संसार ऐश-आराम में मग्न था उस समय वे अपने हाथ में क़लम लिये अपने दिमाग और अध्ययन को चिरस्थायी कर रहे थे। निराश मत होओ, और अगर निराश होओ भी तो अपना काम बन्द मत करो। निराशा में भी काम करते जाओ।"

अवकाश के कुछ क्षण

जीवन का प्रत्येक क्षण अमोल है। संसार की ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो एक क्षण के मूल्य के बराबर हो सके। प्रत्येक क्षण हमारे लिए अपूर्व अवसर लेकर आता है, यदि हम उसका उपयोग कर सकें। जो समय को नष्ट करते हैं, वे स्वयं को नष्ट करते हैं।

हममें से अधिक ऐसे हैं जो अवकाश न मिलने की प्रायः शिकायत करते पाये जाते हैं। यह शिकायत बहुत कुछ ठीक है। हमारे पराधीन और पंगु देश में अपने और अपने आश्रितों के पेट भरने के लिए ही हमें अपने समय का सर्वोत्तम भाग खपा देना पड़ता है। अधिक संख्या ऐसे ही लोगों की मिलेगी जो रात-दिन मर-खप कर भी काम नहीं चला पाते। दिन भर के कठिन परिश्रम के पश्चात्--वह चाहे शारीरिक हो अथवा मानसिक--इतनी शक्ति शेष नहीं रह जाती कि कुछ और किया जा सके। शरीर और मन ऐसे थक जाते हैं कि पूरा विश्राम चाहते हैं। और यदि उतना भी विश्राम न किया जाय, तो शरीर कितने दिन चले?

यह तो है निम्न काम-काजी वर्ग की स्थिति। उस वर्ग की स्थिति जो उच्च श्रेणी का कहा जाता है, उससे सर्वथा विपरीत है। उस वर्ग के सदस्यों के पास इतना अवकाश रहता है कि उसको खपाने के लिए विविध मनोरंजनों की सृष्टि उन्हें करनी पड़ती है। होटल, सिनेमा, जलपान-गृह, खेल-तमाशे शिकार और सैर-सपाटे की योजनाएँ इसी वर्ग की देन हैं। इन दोनों के बीच में जो वर्ग है, उसे मध्यम-वर्ग कहते हैं। इस वर्ग में कुछ बातें निम्नवर्ग की हैं, कुछ उच्चवर्ग की। आजीविका के लिए इसे निम्न-वर्ग की अपेक्षा कम परिश्रम करना पड़ता है तो मनोरंजन के कार्यों में यह उच्चवर्ग की अपेक्षा कम सहयोग दे पाता है। पर ध्यान से देखा जाय

तो उन्नति और सुधार की गुञ्जायश इन उपर्युक्त तीनों वर्गों के लिए है, और उस महान् कार्य के लिए जो समय निस्संकोच व्यय किया जा सकता है, वह है 'अवकाश के कुछ क्षण'।

इन्हीं कुछ क्षणों का ठीक ठीक उपयोग करते हुए निम्नवर्ग के कुछ सदस्य मध्यवर्ग में और फिर वहाँ से उच्चवर्ग में पहुँच चुके हैं; और मध्य और उच्च वर्ग के मनुष्य ऐसे-ऐसे लोक-हित के काम कर गए हैं, जिनके लिए मानव जाति सदैव उनकी ऋणी रहेगी।

हूबरिट ने लिखा है—"ये सब बातें जो मैं करके दिखा चुका हूँ, अथवा जिन्हें करके दिखाने की मेरी अभिलाषा है, सब धीरे-धीरे, धैर्य से और चींटी के समान कार्य में तत्पर रहकर मैंने की हैं। मैं क्रमशः आगे बढ़ा हूँ। मैं चाहता हूँ कि नवयुवक समय के उन अमूल्य टुकड़ों को—जिन्हें क्षण कहते हैं, काम में लाना सीखें।"

गीता में योगी की परिभाषा देते हुए कहा है—"जो अन्य प्राणियों के लिए रात्रि होती है, वह संयमी के लिए जागने और काम करने का समय होता है।" हूबरिट ऐसा ही संयमी था। जब सब सोते थे, तब वह काम करता था। प्रसिद्ध वक्ता बर्क के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि जब अन्य लड़के खेल-कूद द्वारा अपना जी बहलाते थे, तब बर्क प्रसिद्ध वक्ताओं के भाषणों का अनुशीलन करता था।

हम खोई हुई सम्पत्ति को मितव्यय और परिश्रम द्वारा फिर संचित कर सकते हैं। भूली हुई विद्या को दुहराकर फिर उपस्थित कर सकते हैं। नष्ट स्वास्थ्य भी संयम, पथ्य और औषध-प्रयोग से पुनः प्राप्त किया जा सकता है; पर खोया हुआ एक क्षण! वह तो किसी मूल्य पर फिर नहीं लौटाया जा सकता।

'टाम काका की कुटिया' नामक उपन्यास, जिसकी गणना संसार के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों में है, हेरट बीचर स्टोव ने अवकाश के कुछ क्षणों का

उपयोग करके ही लिख डाला था। उसका पारिवारिक जीवन अशान्तिमय और झंझटों से भरा हुआ था। फिर भी यह देखकर आश्चर्य होता है कि हेरट किस प्रकार ऐसे उपन्यास की रचना कर सका, और सब से अधिक यह, कि वह अपने मन को शान्त कैसे रख सका।

मिल्टन का 'पैराडायज लास्ट' संसार के सर्वश्रेष्ठ महाकाव्यों में गिना जाता है। उसके पढ़नेवाले समझते होंगे कि हमारे हिन्दी के अगणित कवियों की भाँति मिल्टन के पास भी पर्याप्त अवकाश रहा होगा, और उस के लिए कविता के सिवा और कोई काम न रहा होगा। पर बात ऐसी न थी। मिल्टन 'ब्रिटिश कामन वेल्थ' और 'प्रोटेक्टरेक्ट' का मन्त्री था, इस कारण उसका जीवन अत्यन्त व्यस्त था। जान स्टुअर्ट मिल की सर्वोत्तम रचना 'ईस्ट इण्डिया हाउस' में क्लर्की करते हुए लिखी गई थी। एक-एक क्षण का उपयोग करनेवाले इन महानुभावों का जीवन हम नवयुवकों और नवयुवतियों को क्या सिखलाता है? समय के इन छोटे-छोटे टुकड़ों को बचाकर वे महान् बन गए। गपशप और मनोविनोद में नवयुवकों को जीवन के अमूल्य क्षणों को नष्ट करते देखकर ही माईकेल फेरेडे ने अपने एक मित्र को लिखा था—'मुझे समय की आवश्यकता है। क्या ही अच्छा होता यदि मैं नाममात्र मूल्य पर इन महाशयों के कुछ घण्टों—नहीं-नहीं, दिनों और महीनों को खरीद सकता।'

जितने महान् हैं उनके पास समय का नितान्त अभाव रहता है। यही कारण है कि वे अपने प्रत्येक क्षण से पूरा-पूरा लाभ उठाना चाहते हैं। प्रयाग-विश्वविद्यालय के राजनीति विभाग के अध्यक्ष डाक्टर बेनी-प्रसाद अपने विशाल अध्ययन और मनन के लिए प्रसिद्ध थे। उनकी विद्वत्ता की ख्याति से आकर्षित होकर, भारत के विभिन्न प्रान्तों के विद्यार्थी, जो राजनीति लेकर एम० ए० करना चाहते थे, प्रयाग-विश्वविद्यालय में आया करते थे। उनके अध्यापन की शैली भी सरल-सुबोध थी। पर पर

उनसे मिलने जाइये, तब वे या तो अध्ययन करते मिलते थे या कुछ लिखते हुए। इन पंक्तियों के लेखक को अनेक बार उनसे मिलने का काम पड़ा था। उसे प्रतिवार मिलने जाने पर यही अनुभव हुआ, कि वे मिलने वाले को विघ्नकर्ता या बाधकमात्र समझते थे। उनका नियम यह था, कि ज्यों ही कोई मिलने के लिए पहुँचा, उन्होंने अपना काम बन्द कर दिया, और उठ कर बरामदे में टहलने लगे। वे टहलते जाते थे और आगन्तुक के प्रश्नों के उत्तर एक या दो शब्दों में देते जाते थे। एक बार जब उनसे ऐसे व्यवहार का कारण पूछा, तो उन्होंने उत्तर दिया कि—"आप लोगों के अकस्मात आ टपकने से मेरी विचार-धारा टूट जाती है और इस प्रकार मेरे कार्य में व्याघात आता है। मैं यह भी जानता हूँ कि मिलने वाला चाहे जितने जरूरी प्रयोजन से आए, पर उसके प्रयोजन का उतना महत्त्व नहीं हो सकता जितना कि मेरे उस समय का होता है, जिस बीच में वह यहाँ रहता है। इसलिए मैं अपने उन क्षणों का पूरा लाभ उठा लेने का प्रयत्न करता हूँ। वह इस प्रकार, कि मैं आने वाले का प्रयोजन भी जान लेता हूँ और उसका समाधान भी कर देता हूँ; साथ ही, लगातार पठन और मनन करते रहने से जो क्लान्ति आजाती है, टहलकर उसे भी दूर कर देता हूँ और फिर ताज़ा हो जाता हूँ।"

कार्य में लगे हुए नवयुवक के लिए कोई चिन्ता नहीं है; न उसके कार्यक्षेत्र को देख कर हम उसके चरित्र का अनुमान कर सकते हैं। किसी के चरित्र का ठीक ज्ञान उसके अवकाश के क्षणों का विवेचन करने से होता है। यह देखना होता है कि वह अपने अवकाश का उपयोग किस प्रकार करता है—नाच-घर या सिनेमा में, हाकी या फुटबाल के खेलों में या सैर-सपाटे में अथवा किसी पुस्तकालय, वाचनालय या किसी ज्ञानी जन की संगति में। व्यवस्था के घण्टे भावी जीवन का निर्माण नहीं करते। जीवन का निर्माण तो उन थोड़े से क्षणों द्वारा होता है, जिन्हें हम अवकाश

के क्षण कहते हैं। व्यस्तता के घराटे तो हमारी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उद्यम करने के होते हैं। भावी-जीवन का निर्माण हम अवकाश में ही कर सकते हैं, क्योंकि उसी समय हम कुछ सोच-समझ सकने के लिए स्वतन्त्र रहते हैं। वे ही क्षण सचमुच हमारे अपने होते हैं। यदि हम उन क्षणों का दुरुपयोग करते हैं तो मानो अपने भावी जीवन के साथ खिलवाड़ करते हैं।

वर्तमान में भूत और भविष्यत् के स्वप्न देखना उचित नहीं। अपने सामने की घड़ियों को पकड़िये और प्रत्येक घड़ी से कुछ न कुछ सीखने का प्रयत्न कीजिए। ईश्वर एक बार ही एक क्षण देता है और दूसरा क्षण देने से पहले, पहले दिये हुए क्षण को वापस ले लेता है। हिन्दी के एक दैनिक पत्र में 'मोटो' के स्थान पर प्रकाशित होने वाला यह छन्द हमारे लिये स्मरण रखने की वस्तु है—

"शानदार था भूत भविष्यत् भी महान् है।
अगर सँभालें आप उसे जो वर्तमान है ॥"

समय नष्ट करने का अर्थ है अपने आचरण का नाश, सामर्थ्य का नाश और अपनी शक्ति का नाश। गृध्र-दृष्टि से सुधार के प्रत्येक अवसर की ताक में रहिए और प्रत्येक क्षण का उपयोग अपने सुधार के लिए कीजिये।

क्या कोई ठीक-ठीक यह बतला सकता है कि इस क्षण के बाद जो क्षण आने वाला है, उसमें क्या होगा? हमारा जीवन एक पूँजी है और क्षण उसकी इकाई है। एक-एक इकाई को बचाइये, जीवन की पूँजी बढ़ जायगी। एक-एक पाई खर्च करते जाइए, कुछ दिनों में सारी पूँजी समाप्त हो जायगी।

———

मितव्यय

हिन्दी के उन्नायक भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र अपने अनेक गुणों के कारण जहाँ आदर्श रूप थे, वहाँ उनमें एक बहुत बड़ा दुर्गुण भी था। वे परले सिरे के अपव्ययी थे। कहते हैं वे प्रतिदिन अपने सारे शरीर पर सुगन्धित रूहों की मालिश कराते थे, गुलाब-जल से स्नान करते थे, राजाओं जैसे वस्त्र पहनते थे और दीपक में फुलेल जलाया करते थे। किसी कवि की साधारण रचना पर रीझ कर उसे हजारों रुपये दान दे देना उनकी शाहखर्ची का परिचायक था। यहीं तक हद होती, तो बहुत था। उनकी असीम उदारता का अनुचित लाभ उठाने वाले भी बहुत थे, जो खुशामदियों और चाटुकारों के रूप में उन्हें रात-दिन घेरे रहते थे। अपनी शान को क़ायम रखने और उन चाटुकारों का सन्तोष-परितोष करने के लिए भारतेन्दु को अपने पूर्वजों का संचित धन पानी की तरह बहाना पड़ता था। यही नहीं, ऐसे लोगों की संगति में रहने के कारण भारतेन्दु में कुछ ऐसे चरित्र-सम्बन्धी दोष आ गए थे जो उनके "भारतेन्दु" नाम को सार्थक करते थे।

एक बार किसी शुभैषी ने उनका अपव्यय देख कर कहा--"बबुआ, जरा हाथ को रोक कर ख़र्च करो। पैसे को इस तरह लुटाना ठीक नहीं" इस पर भारतेन्दु ने कहा—"यह धन मेरे बाप-दादों को खा गया है, अब मैं इसे खा डालूँगा।"

उनकी फ़िजूलख़र्ची का उल्लेख करते हुए उनके एक समसामयिक ने लिखा है--"जाड़े की रात थी। मैं बैठक में बैठा उनके आगमन की प्रतीक्षा कर रहा था। कुछ और मित्र भी बैठे थे। इतने में भारतेन्दु आए। इधर-उधर देखकर उन्होंने कहा--"अंगीठी नहीं है।" और फिर उन्होंने जेब से

नोटों का बंडल निकाला और उसमें दियासलाई लगाकर हाथों को सेंकने लगे। उपस्थित मित्र अवाक् होकर देखते रह गए। उन्हें चकित देखकर वह शान से बोले—"लोग कहते हैं कि हरिश्चन्द्र धन फूँक कर तापता है। इस कथन की सत्यता आप लोग अपनी आँखों देख लें।"

पर क्या सचमुच भारतेन्दु उस धन को खा सके? तीस-बत्तीस वर्ष की अल्प वयस में ही वे स्वर्गगामी होगए, और अपने अल्प-जीवन के अन्तिम दिनों में वे पैसे-पैसे के मोहताज और हजारों के ऋणी होगए थे। उनकी छोटी-से-छोटी आवश्यकताओं की पूर्ति भी मित्रों की सहायता के बिना न हो पाती थी। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में उन्होंने जो करुणाजनक पत्र लिखे थे और जिनमें उन्होंने अपने मित्रों से आर्थिक सहायता की प्रार्थना की थी, वे अब तक सुरक्षित हैं और उनकी उस झूठी शान का परिहास कर रहे हैं।

उदारता बुरी नहीं है, पर उसकी एक सीमा है। सीमा का अतिक्रमण करने पर विपत्ति का सामना करना पड़ता है। लाखों का दान करने वाले नवाब अब्दुर्रहीम खानखाना को भी तब कहना पड़ता है—

ये रहीम घर-घर फिरैं माँगि मधुकरी खायँ।
यारो यारी छोड़िये वे रहीम अब नायँ॥

और उनके आश्रितों और खुशामदियों को यह विचार कर उनका साथ छोड़ देना पड़ता है—

जिन दिन देखे वे कुसुम गई सो बीति बहार।
अब अलि रही गुलाब की अपत कटीली डार॥

धन कमाना कठिन नहीं है। उपयुक्त योग्यता होने पर प्रत्येक मनुष्य धन कमा सकता है, पर उसका सदुपयोग करना कठिन है। किसी मनुष्य के विवेक की परीक्षा इससे नहीं होती कि वह कितना धन कमा लेता है, प्रत्युत इससे होती है कि वह रुपया किस तरह कमाता, व्यय करता और बचाता

है। यह सत्य है कि धन जीवन का साधन है, साध्य नहीं; और जीवन का उद्देश्य रुपया इकट्ठा करना नहीं है; पर यह भी सत्य है कि धन शारीरिक सुख और सांसारिक महत्ता का प्रधान साधन है। अनेक ऐसे गुण हैं, धन के अभाव में जिनकी चर्चा ही व्यर्थ है। ईमानदारी, उदारता, न्यायशीलता, स्वार्थत्याग, मितव्ययिता और दूरदर्शिता का धन से सीधा सम्बन्ध है। जिन्हें धन प्राप्त है, जो उसका सदुपयोग भी जानते हैं, वे ही इन गुणों पर अधिकार पा सकते हैं। लोक-व्यवहार में कुशल वही माना जाता है जिसे धन का कमाना, बचाना, व्यय करना, उधार लेना, ठीक समय पर उसका चुका देना और अन्त में कुटुम्ब के लिए बहुत कुछ छोड़ जाना आता है।

एक-एक पैसा यत्नपूर्वक बचाना और भविष्य के लिए संचित करना बहुत बड़ी बुद्धिमत्ता है। उन लोगों को कभी बुद्धिमान नहीं कहा जा सकता, जो हज़ारों कमाते हैं, पर समय पड़ने पर जिन्हें दूसरों के सामने हाथ फैलाना पड़ता है। मितव्ययिता सुप्रबन्ध और दूरदर्शिता का कार्य है। अभिप्राय यह कि जो अपने आय-व्यय पर नियंत्रण रख सकता है और जो भावी विपदाओं के प्रति सतर्क रहता है वह अवश्य मितव्ययी होगा। मितव्ययिता हमें आत्म-संयम और स्वार्थ-निरोध का पाठ पढ़ाती है।

धन की क्या आवश्यकता है? इसका उत्तर अर्थशास्त्रवेत्ताओं ने यह दिया है--"बेकारी, बीमारी और मृत्यु के लिए हमें धन की आवश्यकता सम्भव है, इनमें पहली दो बातों का किसी भाग्यशाली को अपने जीवनकाल में कभी सामना न करना पड़े। पर तीसरी बात तो अनिवार्य है। अतः बुद्धिमत्ता यही है कि ऐसा प्रबन्ध किया जाय जिससे न केवल हमें, प्रत्युत उन व्यक्तियों को भी जो हमारे आश्रित हैं—अर्थात् जिनका पालन-पोषण हमें करना पड़ता है, विपत्ति के आजाने पर जहाँ तक सम्भव हो कम कष्ट उठाना पड़े। मितव्यय इस दृष्टि से बहुत ज़रूरी है।

ऊपर स्वार्थनिरोध और आत्मसंयम का उल्लेख हुआ है। इसका तात्पर्य

यह कदापि नहीं है, कि पैसा इकट्ठा करने के लिए हम ऐसे पागल हो जायँ, कि न स्वयं खाएँ-पहनें न अपने आश्रितों को ठीक से खाने-पहनने दें और धन बचाकर उसे गाड़ कर रखते जायँ। वह तो स्वार्थ-निरोध या आत्म-संयम नहीं है। उसकी गणना तो आत्म-प्रवंचना और आत्म-हत्या में की जायगी। स्वार्थ-निरोध का अर्थ है किसी मिलते हुए सुख को इसलिए त्याग देना कि आगे चलकर उससे कोई अच्छा परिणाम निकले। एक उदाहरण देने से बात स्पष्ट हो जायगी। मान लीजिए, आपकी और आपके एक पड़ोसी की आमदनी बराबर है। दोनों के समान सन्तानें हैं। आपका पड़ोसी खाने-पीने और पहनने-ओढ़ने का शौक़ीन है। अपने शौक़ को पूरा करने की धुन में वह जो कुछ कमाता है, सब व्यय कर डालता है। वह यह नहीं सोचता कि आगे चलकर पैसे के अभाव में उसकी सन्तानों की शिक्षा-दीक्षा का क्या होगा। पर आप खाने-पीने आदि में केवल उतना व्यय करते हैं, जितने से एक साधारण गृहस्थ का काम मज़े से चल सकता है, और कुछ बचाकर प्रतिमास इसलिए रखते जाते हैं, जिससे समय पर अपनी सन्तानों की पढ़ाई-लिखाई और खाने-पहनने की समुचित व्यवस्था कर सकें। यह आत्मसंयम है।

हमारे समाज में ऐसे मनुष्यों की संख्या कम नहीं है जो ख़ूब कमाते हैं, पर सब ख़र्च कर डालते हैं। फिर निराश्रय की भाँति समय पड़ने पर मित-व्ययी लोगों का मुँह ताका करते हैं। यह दोष उच्च और मध्य वर्ग में ही हो, यह बात नहीं है। जिन्हें पैसा पैतृक सम्पत्ति के रूप में मिला है अर्थात् जिन्होंने उसे कमाने के लिए एड़ी-चोटी का पसीना एक नहीं किया है, वे पैसे को फूँकें तो अनुचित होते हुए भी स्वाभाविक-सा लगता है। पर वे इक्के-ताँगेवाले, कुली, मज़दूर और कारीगर, जिन्हें कुछ पैसों के लिए रात-दिन खटना पड़ता है, यदि संध्या के अँधेरे में ताड़ी-घर या शराबख़ाने में अचेत पड़े दिखाई दें तो देख कर दुःख होता है। यदि वे संयम से रहें, मेहनत की कमाई का सदुपयोग करें और उसे प्रबन्ध के साथ व्यय करें, तो उनके घरों

की ऐसी दशा न रहे, उनके बाल-बच्चे ऐसे फटे हाल न रहें। शहरों की मजदूर बस्तियों को नरक जैसा बनाए रखने में शोषक वर्ग या 'बुर्जुआ क्लास' उतना जिम्मेदार नहीं है जितनी मजदूरों की अपनी खराब आदतें हैं। एक औसत मजदूर की आमदनी औसत किसान की आमदनी से अधिक होती है; फिर भी दोनों वर्गों की औसत हालत में, उनके रहन-सहन के मापदण्ड में जो अन्तर है वह छिपा नहीं है। कारण, किसान का अपेक्षाकृत संयमशील और मितव्ययी होना और मजदूर का पियक्कड़ और फ़िजूलखर्च होना है। उद्योग-धन्धे में जो लोग फँसे हैं, उनकी सफलता और स्वाधीनता मितव्ययिता पर बहुत कुछ निर्भर है।

अपव्यय का दोष कुछ जातियों में परम्परा के रूप में भी पाया जाता है। ऐसे समाज प्रतिष्ठित नहीं होते। समय उनको मनचाहा नाच नचाया करता है। उस जाति में आत्म-सम्मान और आत्मा-निर्भरता की भावनाएँ भी नहीं पाई जातीं। उसके सदस्यों को खाने उड़ाने के लिए धन चाहिए—वह चाहे किसी प्रकार से मिले। ऐसी जातियों का नैतिक स्तर स्वभावतः निम्न होता है। और जातियाँ उन्हें सम्मान और विश्वास योग्य नहीं समझतीं।

रुपए की छोटी-से-छोटी बचत भी गृहस्वामी और गृहसदस्यों के लिए बहुत सहारा होती है। व्यावहारिक जीवन में रुपया वह शक्ति है जिसके रहने पर मनुष्य सदा शेर बना रहता है। स्वर्ग पर भी रुपया राह निकाल देता है। असम्भव कार्य को पलक मारते सम्भव कर देता है।

किसी पुस्तक में एक कहानी पढ़ी थी। एक युवक बहुत दिनों से बेकार था। कुटुम्ब उसे भार-स्वरूप प्रतीत हो रहा था। नौकरी खोजते-खोजते थक गया था, पर कहीं ठिकाना न लगता था। एक बार उसकी भेंट ऐसे व्यक्ति से हुई जो ऊँचे अधिकारियों की दलाली करता था। उसने इस नवयुवक को दूसरे दिन एकान्त में मिलने को बुलाया और उसे आश्वासन दिया कि वह उसकी नौकरी लगवा देगा।

दूसरे दिन मिलने पर उस दलाल ने कहा कि यदि तुम रिश्वत में सौ रुपए तक देने का प्रबन्ध कर सको तो मैं तुम्हें ५०) मासिक की जगह दिला सकता हूँ। यह ५०) मासिक की नौकरी उस युवक को अप्रत्याशित वरदान के रूप में दिखलाई दी, पर १००) देने की बात कठिन थी। दलाल इस बात पर राजी नहीं हुआ कि युवक नौकरी करते हुए थोड़ा-थोड़ा करके १००) चुका देगा। वह रुपए पेशगी चाहता था।

चिन्ताओं में डूबा युवक घर आया और मन मार कर चारपाई पर गिर पड़ा। पत्नी उसे उदास तो प्रतिदिन देखा करती थी, पर आज की उदासी में कुछ विशेषता थी। पति के पास जाकर उसने सब वृत्तान्त ज्ञात किया और फिर कहा—"यदि १००) पेशगी देने की ही बात है तो इसका प्रबन्ध मैं कर दूँगी।" युवक को आश्चर्य चकित करने के लिए यह काफ़ी था; क्योंकि वह जानता था कि घर में कोई ऐसा आभूषण या वर्त्तन-भाँड़ा भी शेष नहीं हैं जिसे गिरवी रखकर या बेचकर १००) प्राप्त किए जा सकें। जो कुछ था वह बेकारी के दिनों में क्रमशः उदरसात् हो चुका था। फिर भी उसने कुछ कहा नहीं। दूसरे दिन युवक जब जाने को तैयार हुआ, तब उसकी स्त्री ने आकर उसे एक थैली दी जिसमें १००) थे। युवक ने हाथ बढ़ाकर थैली लेली, पर उसे लेकर दुश्चिन्ता की आड़ी-तिरछी और श्यामल रेखाएँ उसके चेहरे पर अंकित होने लगीं।

उसे दुश्चिन्ता और दुष्कल्पनाओं में पड़ा देखकर स्त्री ने कहा—"स्वामी, आप यह रुपया निस्संकोच ले जाइये। न मैंने इसे किसी से उधार लिया है और न किसी पापकर्म द्वारा उपार्जित किया है। आप सन्देह में पड़े हैं, इसलिए बता रही हूँ कि ये रुपये मैंने मितव्यय और सुप्रबन्ध द्वारा बचाए हैं। घर में रोज ईंधन जला करता है। मैं बबूल की लकड़ी जान-बूझकर मँगाती थी क्योंकि उसमें आँच अधिक होती है। भोजन पक चुकने पर जो कोयले बचते थे, उन्हें मैं सावधानी से बुझाकर रख लेती

थी। उनमें जो कोयला छोटा होता उसे लेकर मैं अँगीठी का काम करती थी, पर जो कोयला अच्छा और बड़ा रहता था, उसे इकट्ठा करके हलवाई की दूकान पर भेज देती थी और उसके पैसे कर लेती थी। इसी प्रकार धीरे-धीरे आपके अनजाने में ही मैंने ये रुपये इकट्ठे कर लिए। मुझे सन्तोष है कि आज ये रुपये हमारे गाढ़े समय में काम आ रहे हैं।"

उस गृहिणी के ये शब्द क्या हमारे घरों की उन बहू बेटियों को स्मरण रखने योग्य नहीं है, जो गृहस्थी की छोटी-छोटी चीजों को योंहीं नष्ट हो जाने देती हैं, और उनकी कोई परवा न करके गृहस्थी की चिन्ता में और पारिवारिक व्यय में अनावश्यक वृद्धि करती रहती हैं?

किसी सुव्यवस्थित अंग्रेजी कारखाने में जाकर देखिए। छोटी-से-छोटी चीज भी वहाँ बेकार फेंकी जाती न दिखाई देगी। टूटी सुइयों, छेद वाले टीन के डिब्बों, जंग खाई आलपीनों, कागज की कतरन और दूसरी ऐसी ही चीजों को, जो हमारी गृहस्थियों में प्रतिदिन झाड़ू की राह घूरे पर पहुँच जाती हैं, वहाँ इकट्ठा किया जाता है, और जब ढेर बड़ा हो जाता है तब टेण्डर मँगाकर वह कवाड़ियों को बेच दिया जाता है। इस प्रकार उससे भी कुछ वसूल कर लिया जाता है। एक कारख़ाने के मालिक ने अपनी अनुभव पुस्तिका में लिखा है—"बीस वर्ष के समय में मुझे अपने कारखाने में ऐसी एक भी वस्तु न मिली, जिसे योंही कूड़ा समझ कर फेंक दिया हो। सूखी घास, जो हमारे सहन से सफ़ाई के लिए छीली जाती, कपड़ों के गन्दे चिथड़े जो मशीनों को पोंछने के बाद बच रहते; कागज की कतरन और बाँस तथा दूसरी लकड़ियों की खपचें भी हम इकट्ठा करते थे और कागज़ बनाने वाले कारख़ानों को अच्छे दामों पर बेच देते थे।

"कारख़ाने का सहन लम्बा-चौड़ा था और वृष्टिकाल में उसमें एक विशेष प्रकार की घास उग आया करती थी। वृष्टि निकल जाने पर सहन की सफ़ाई के लिए वह घास छील डाली जाती थी और सुखाकर कागज़

की फ़ैक्टरियों के हाथ बेच दी जाती थी, क्योंकि पशु उसे खाना पसन्द नहीं करते थे। एक बार मैंने देखा कि उस घास के कुछ पौधे पक्की मोरी में गिर गए हैं और उनसे मिलकर मोरी के उस भाग का पानी एक विशेष प्रकार से नीला हो गया है। मैंने अनुमान किया कि उस घास में रंग है और उसका दूसरा उपयोग भी हो सकता है। एक पक्का हौज़ बनवाकर मैंने उन पौधों को सड़ाया और उसके पानी को आँच देकर उड़ा दिया गया। इस प्रकार एक पक्का नीला रंग बन गया जो नील के रंग की टक्कर का था। बाज़ार में इस रंग की बहुत कद्र हुई, अतः मेरे कारखाने की 'अतिरिक्त उपजों' में उसका विशेषस्थान हो गया।"

कावडेन का कथन है—"संसार के लोगों में सदा दो वर्ग रहे हैं--एक तो वे जो बचत करते हैं और दूसरे वे जो सबका सब व्यय कर डालते हैं अर्थात् मितव्ययी और अपव्ययी। मितव्ययी मनुष्यों ने बड़े-बड़े मकान, पुल, मिल, रेलें और जहाज़ बनाए हैं और संस्कृति के विकास में योग दिया है। अपव्ययी सदा उनके दास रहे हैं।"

ग्रीड ने कहा है--"ऐसा कोई छूमन्तर नहीं है जिसके द्वारा मनुष्य अपने को निम्नावस्था से शीघ्र उठा सके, सिवा इसके कि वह उन्हीं साधनों का अवलम्बन करे—उन्हीं गुणों को अपनाने का प्रयत्न करे, जिनके द्वारा उसके अन्य साथी उस दुखद परिस्थिति से छुटकारा पा सके हैं। प्रत्येक मनुष्य के लिए केवल एक ही मार्ग है जिस पर चल कर वह अपनी परिस्थिति को--यदि वह अच्छी है, क़ायम रख सकता है; और यदि वह बुरी है तो उससे अपने को ऊपर उठा सकता है। वह मार्ग है परिश्रम, संयम, ईमानदारी और मितव्यय का।"

अपव्यय और मितव्यय की सीमा निर्धारित करना कठिन है। कोई ऐसी रेखा निश्चयपूर्वक नहीं खींची जा सकती, जो यह दिखा सके कि उससे इस पार के व्यय मितव्यय में आते हैं और उस पार के अपव्यय में। प्रत्येक

मनुष्य अपनी आवश्यकताओं के अनुसार ही इनका निर्धारण कर सकता है। मूलभूत सिद्धान्त यह है कि पारिवारिक या व्यक्तिगत आय का एक निश्चित अंश बचता अवश्य रहे, और वह अंश, जहाँ तक सम्भव हो, अधिक से अधिक रहे। यदि हम अपने व्यय को तटस्थ की भाँति देखें, तो हमें ऐसी अनेक वस्तुएँ मिल जायँगी जिन पर पैसा व्यय करने की वस्तुतः कोई आवश्यकता नहीं थी, अर्थात् उनके विना भी हमारा काम चल सकता था। कोई वस्तु केवल तब मोल लो जब उसके विना काम ही न चलता हो। शान-शौकत की वस्तुएँ, उत्तम कोटि का बहुमूल्य फ़र्नीचर, सैर-सपाटे की सामग्रियाँ विलास की वस्तुएँ हैं। बहुमूल्य साड़ियाँ, लिपस्टिक, स्नो, पाउडर और पफ़ आदि वस्तुएँ, जिनपर गृहस्थ का बहुत-सा रुपया प्रतिदिन व्यय किया जाता है, इसी कोटि में आती हैं। क्या कोई कह सकता है कि ये वस्तुएँ, उसकी गृहस्थी के लिये नितान्त आवश्यक हैं?

अपव्ययी सदा निर्धन रहता है। यह ठीक उस दास के समान है जिसे अपनी परिस्थिति पर अधिकार नहीं है; वह दूसरे की मानने के लिए विवश हो जाता है। उसे अपनी अन्तरात्मा को हनन करके दूसरों की ख़ुशामद करनी पड़ती है। यदि कहीं महँगी आ गई, जैसी कि इस द्वितीय महायुद्ध के ५–६ वर्ष में रही है, तो उसे या तो मित्रों के सामने हाथ फैलाना पड़ता है, या ग़रीब बनकर रियायतें प्राप्त करने को विवश होना पड़ता है। ऐसे मनुष्य का रोजगार यदि चला जाय, तो उसे यह देखकर पश्चात्ताप होता है कि जिस वस्तु को उसने १००) में ख़रीदा था, उसे कोई २०) में भी लेने को तैयार नहीं होता। ऐसे मनुष्यों के पास अन्त में इतना भी नहीं बचता कि वे दूसरी जगह जा कर फिर कुछ धंधा शुरू कर सकें।

सभी विपत्तियाँ सम्भावित हैं और उनसे बचने का एकमात्र उपाय मितव्यय है। इसके लिए न अधिक साहस की आवश्यकता है और न विशेष योग्यता की। साधारण मनोबल और सूझ-बूझ से काम चल जाता है। गृह-

प्रबंध की ओर सतर्क दृष्टि रखना पर्याप्त है। प्रबन्ध, नियम, दूरदर्शिता और किसी वस्तु को व्यर्थ नष्ट होने से बचाना मितव्यय में सहायक होते हैं।

किफ़ायतशारी कंजूसी नहीं है। एक सेठ के संबंध में पढ़ा था, जो अपने घर के लोगों को अपने सामने बुलाकर खाद्य-सामग्री दिलाया करता था। नई बहू आई तो यह सब देख कर बहुत चौंकी और चिन्तित रहने लगी। उसका स्वास्थ्य गिरता देखकर सास ने कारण पूछा। उसने कहा—"यहाँ का 'राशनिंग-सिस्टम' देखकर मैं चिन्तित हूँ। जहाँ आटा और दाल तोल-तोल कर मिलता है, वहाँ मैं कितने दिन जीवित रहूँगी। सेठ के कानों में भी बहू की यह बात पहुँची, पर वे चुप रहे।

कुछ दिनों बाद बहू के पीहर से खबर आई कि सम्बन्धी सेठ का दिवाला होने जा रहा है। एक लाख मोहरों का यदि तुरन्त प्रबन्ध न किया गया तो साख उठ जायगी और फट्ट उलट जायगा। सेठ उस पत्र को लेकर बहू के पास स्वयं पहुँचे और बोले—"तुम शीघ्र पीहर जाओ और अपने साथ दस तोड़े एक-एक लाख मोहरों के लेती जाओ। प्रत्येक तोड़े में विभिन्न सन् की मोहरें रहें। तकाजे वाले जिस सन् की मोहरें मागें, उसी की उन्हें दिला दो। इस तरह हमारे संबंधी की साख फिर जम जायगी।" बहू की शंका का इससे अच्छा समाधान और क्या हो सकता था।

सच्चा मितव्ययी धन की पूजा नहीं करता, वह उसे एक उत्तम साधन मान कर उसकी रक्षा करता है। कंजूस वह है जो रुपये की पूजा करे, उसका उचित उपयोग न करे। सच्चा स्वावलम्बी सदा मितव्ययी होता है। उसे जब अपना ही सहारा है, तब वह अपने हाथ के साधन को अवश्य सुरक्षित रक्खेगा।

एक पिता ने अपने पुत्र को गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते समय यह उपदेश दिया था—"मैं चाहता हूँ कि तुम सब प्रकार से सुखी रहो। इसके लिए मैं मितव्ययिता पर अवश्य जोर दूँगा। ओछे विचारने वाले इस से कितना ही घृणा करें और मितव्ययी की हँसी उड़ाएँ, पर है यह बहुत

आवश्यक गुण; क्योंकि स्वाधीनता इसी से मिलती है जो प्रत्येक उत्साही का जीवन-लक्ष्य होता है।"

सच्चा ईमानदार वही है जो अपनी आमदनी से अधिक व्यय नहीं करता। पचास की आमदनी और सौ का खर्च यही साबित करता है कि धन किसी अनुचित स्रोत द्वारा आ रहा है। लखनऊ के एक नवाब अपने किसी साधारण कर्मचारी के घर निमन्त्रण पाकर तालग्राम गए थे। वहाँ जाकर उन्होंने अपने कर्मचारी के जो ठाठ-बाट देखे, उससे उन्हें निश्चय हो गया कि वह व्यक्ति अवश्य किसी बहाने से प्रजा को लूटता-खसोटता है। अन्यथा राज्य की ओर से उसे जो कुछ दिया जाता है, उससे ऐसी शान-शौकत कैसे रह सकती है। नवाब ने न केवल उस कर्मचारी को क़ैद कर लिया, बल्कि उसकी सारी सम्पत्ति शाही खजाने में जमा करा ली। तालग्राम में उसकी हवेली अभी तक खड़ी है।

रुपये का ठीक मूल्य तब ज्ञात होता है, जब वह पास नहीं रहता। विलासी आदमी ऋण में शीघ्र ही फँस जाता है, जो उसके जीवन को भार बना देता है। ऐसे आदमियों के जीवन के सुख-स्वतन्त्रता शीघ्र छिन जाते हैं। एक पैसे का बचा लेना उसके कमा लेने से अधिक महत्त्व का है। किफ़ायत की आदत छोटी-छोटी चीज़ों से सीखी जाती है। जो बच्चे, जो पाते हैं उसे खा-पीकर समाप्त कर देते हैं, वे बड़े होकर अपना हाथ रोक भी कैसे सकते हैं?

"खाली थैला खड़ा नहीं हो सकता; निर्धन मनुष्य भी ईमानदार नहीं रह सकता और ऋणी सत्यवादी नहीं हो सकता," इन आदर्श वाक्यों का खण्डन आज तक कोई नहीं कर सका है। कहा गया है कि झूँठ की सवारी ऋण पर रहती है। अभिप्राय स्पष्ट है। ऋणी जब ठीक समय पर ऋण नहीं चुका पाता, तब महाजन से तरह-तरह के बहाने करता है और एक के बाद दूसरा झूँठ बोलता है। अपव्ययिता ऋण की जननी है। उधार लेकर व्यय

करना जितना सरल होता है, अपना कमाया पैसा उतनी सरलता से खर्च करते नहीं बनता। इसीलिए जिन्हें उधार लेकर अपव्यय करने की आदत पड़ जाती है, उनका ऋण से छूटना असम्भव हो जाता है।

पहली बार ऋण लेना पहली बार झूठ बोलने के समान है। फिर बार-बार वही क्रम दुहराना पड़ता है। फिर ऋण लिया और फिर झूठ बोला जाता है। क्रमशः मनुष्य पतन की ओर जाते-जाते, इतने गहरे में गिर जाता है, जहाँ से उसे मृत्यु भी नहीं उबार पाती। एक भुक्त-भोगी ने लिखा है:—

"उस सुख को लात मारो जो कर्ज लेकर भोगा जा सकता है। उस वस्तु को न लो जो ऋण के पैसे से खरीदी जाय; भले ही उसके अभाव में तुम्हें कितना ही कष्ट उठाना पड़े। रुपया कभी उधार मत लो। यह काम मनुष्य को नीच बना देता है। चाहो तो उधार दे सकते हो; पर अपना वित्त और लेने वाले की स्थिति समझ कर! चाहे जो हो, पर उधार मत लो।

नीतिकार ने स्पष्ट लिखा है–'ऋणकर्त्ता पिता शत्रुः।' जो अपना जीवन ऋण से प्रारम्भ करते हैं, उन बच्चों का भगवान् ही रक्षक है। जब तक वे कुछ पैदा करने योग्य होंगे, तब तक ब्याज और मूल मिलकर इतना हो जायगा कि वे यत्न करके भी उससे मुक्ति न पा सकेंगे। अतः अभी से अपनी सन्तान का हित ध्यान में रखकर, दृढ़ संकल्प कर लो कि हम ऋण न लेंगे। अपनी आवश्यकताओं को इतना परिमित रक्खेंगे कि हमें दूसरे के साहाय्य की आवश्यकता ही न हो। ग़रीबी हमारे सुख की शत्रु है। वह अपव्ययिता से आती है। अपव्यय न करो तो ग़रीबी का सामना कभी न करना पड़ेगा।

मितव्ययिता के लिए यह आवश्यक है कि अपने व्यय की छोटी-से छोटी मद पर पूरा ध्यान रक्खा जाय। मनुष्य को अपना दैनिक हिसाब आँखों के सामने रखना चाहिए। अपने व्यय को आय के भीतर रखने के लिए इससे अच्छी और बात नहीं है। महादेव गोविन्द रानाडे इस विषय

में बड़े सावधान थे। उन्होंने अपने घर के व्यय का क्रम बाँध रक्खा था। वे अपनी पत्नी को घरेलू व्यय के लिए सौ रुपए प्रतिमास देकर कह देते थे कि इसी में महीने भर का पूरा व्यय चलाना है। रात को वे तब तक नहीं सोते थे, जब तक आय-व्यय का लेखा ठीक न मिल जाता।

युद्ध और मँहगी से अनेक हानियाँ हुई हैं। उसमें सबसे बड़ी हानि यह हुई है कि मध्यवर्ग के पास पैसे की इफ़रात हो गई है। नाच-घरों और सिनेमा-घरों के सामने जितनी भीड़ देखने को मिलती है, पहले-पहले उसकी आधी भी नहीं होती थी। शृङ्गार की वस्तुओं के दाम बहुत चढ़ गए हैं, फिर भी उनकी इतनी बिक्री है कि देखकर आश्चर्य होता है। आजकल, विशेष-तया मध्यवर्ग को जीवन का स्तर ऊँचा बनाने की सनक सवार हो गई है। सब आधुनिकतम बनना चाहते हैं। यह फ़ैशन का दासत्वभर है। अपव्यय का यह प्रधान कारण है। झूठी दिखावट का भी इसमें योग रहता है। हम ऊपरी तड़क-भड़क से दूसरों पर धनवत्ता का सिक्का जमाना चाहते हैं। इससे कितनी हानि होती है, यह बताने की आवश्यकता नहीं। ऐसा करना निर्धनता को निमन्त्रण देना है।

"एक पैसा बहुत नगण्य वस्तु है; पर हजारों गृहस्थियों का सुख उसी एक पैसे को ठीक तरह खर्च करने और जमा करने पर निर्भर है। यदि हम अपने पसीने की कमाई के पैसे को बेकार नष्ट कर दें, तो हमारा जीवन पशुओं के समान हो जायगा। परन्तु यदि हम इन्हीं पैसों को अपने निर्वाह और बाल-बच्चों की शिक्षा के लिये बचाते रहें, तो इसका फल यह होगा कि हमारी शक्ति और सुख बढ़ जायँगे; भविष्य का भय कम हो जायगा, और हम न केवल अपनी, बल्कि दूसरों की भी सहायता कर सकेंगे।"

डाक्टर सेमुएल का उपर्युक्त कथन अक्षरशः सत्य है।

पुरुषार्थ

पिछले दिनों समाचार-पत्रों में छपा था कि एक क्षुब्ध खाकसार-नेता मुस्लिमलीग के नेता जिना साहब से मिलने के लिए उनकी आलीशान कोठी पर—जो बम्बई में मलाबार हिल जैसे रमणीय स्थान पर है, पहुँचा। कोठी का सामान और सजावट देखकर वह दंग रह गया। मिस्टर जिना से मिलने पर उसने सबसे पहला प्रश्न यह किया कि—"आप इतनी शान और ठाठ-बाट से क्यों रहते हैं ?"

मिस्टर जिना ने उत्तर दिया—"इसलिए कि इस सारी शान और इस सारे ठाठ बाट को मैंने स्वयं पैदा किया है। अगर आप चाहें तो आप भी पुरुषार्थ और उद्योग से धन प्राप्त कर सकते हैं और मेरी ही तरह या मुझसे बढ़कर ठाठ बना सकते हैं।' मिस्टर जिना के इन शब्दों में कितनी सचाई है ! नीतिकार का मत है कि लक्ष्मी पुरुषार्थ की चेरी होती है।

जो पुरुषार्थी है, जो अपने हाथ से कुँआ खोदकर पानी पीने को तैयार है; जो अथक उद्योग कर सकता है, उसके लिए संसार की कौन वस्तु अप्राप्य है ! वे सच्चे पुरुषार्थी ही थे जिन्होंने अपनी समस्त इच्छाओं की पूर्ति की, संसार के सब सुखों को भोगा, और मृत्यु के पश्चात् भी अपनी कीर्ति छोड़ गए। बिना उद्यम के—बिना पुरुषार्थ के, कुछ भी नहीं मिलता। सोते सिंह के मुँह में मृग आप से-आप आकर प्रवेश नहीं करता।

अपनी सारी शक्तियों को, निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए, एक स्थान पर केन्द्रीभूत करना ही पुरुषार्थ है। सीधे शब्दों में अपने लक्ष्य को पूरा करने के लिये, अपनी समस्त शक्तियों से परिश्रम करना ही पुरुषार्थ है।

प्रसिद्ध कवि लाँगफेलो की कविता की कुछ पंक्तियों का भावार्थ इस

प्रकार है—"हमारे बहुत से मित्र उन्नति के शिखर पर पहुँच गए हैं, जब कि हम अभी तक अवनति के गर्त से ही नहीं निकल पाये। कारण केवल यही है कि जब हम लोग गहरी निद्रा में मग्न रहते थे, हमारे मित्र सदैव आगे बढ़ते रहते थे। वे पुरुषार्थी थे, इसी कारण वे सफल हो गए।"

ढेला फेंकते समय, या फुटबाल-हाकी खेलते समय, हम प्रतिदिन अनुभव करते हैं, कि जितनी तेज़ी से फुटबाल में किक करते हैं, वह उतनी ही अधिक दूर जाती है; जितने जोर से हाकी से हिट करते हैं, हाकी-बॉल उतनी ही ज्यादा दूर जाती है। गाँवों में गुल्ली डंडा खेलते में जितनी जोर से गुल्ली उछाली जाती है, वह उतनी ही अधिक दूर पड़ती है। ठीक यही दशा हमारी है। हम जितना अधिक परिश्रम करेंगे; उतना ही अधिक बढ़ेंगे। यदि अपने परिश्रम में ढील डाल देंगे, तो हमारी सफलता की गति भी धीमी पड़ जायगी। इससे अनुमान किया जाता है कि अपने ध्येय में सफलता प्राप्त करने के लिए हमें पुरुषार्थ की कितनी आवश्यकता होती है।

हमारे अधिकांश काम अपनी साधारण गति से चला करते हैं। उनका बँधा-बँधाया और नपा-तुला ढंग होता है। पर जीवन में अनेक अवसर ऐसे भी आते हैं, जब हमें असाधारण काम उठाना पड़ता है। उस समय यदि हम कार्य को पूरा करने का दृढ़ संकल्प न कर लें, तो हमारे उद्देश्य की पूर्ति कदापि न हो। उस समय हमारे पुरुषार्थ की परीक्षा होती है। हमारा पुरुषार्थ ही हमें टेढ़ी और पेचीदा गलियों के अँधेरे मार्ग से सफलता के प्रकाश-केन्द्र तक पहुँचा देता है। बीच-बीच हमें लगता है, कि हम जिस प्रकार बढ़ रहे हैं, वह ठीक नहीं। यहीं से लौट जायँ, आगे खतरा है। वहीं हमारा पुरुषार्थ हमें ललकारता है। हम सावधान हो जाते हैं और हमें वह सफलता की ओर घसीट ही ले जाता है।

महाराणा प्रताप के सामने ऐसी ही कठिनाई उस समय उपस्थित हुई थी, जब वे स्वाधीनता की साधना में वन-वन भटक रहे थे। कुटुम्ब साथ था,

अन्न का एक दाना मिलना असम्भव था। जब बच्चे भूखों मरने लगे। तब रानी ने सूखी घास के चून से अलोनी रोटी बनाई। दुर्भाग्य से एक बच्ची उसे भी न खा पाई। वह रोटी हाथ में लेकर खाने को बैठी ही थी, कि एक वन-बिलार निकला और रोटी को छीन भागा। लड़की रोती ही रह गई।

प्रताप इस करुण दृश्य को न देख सके। उनका साहस और पुरुषार्थ जवाब देने लगा। उन्होंने अकबर बादशाह को एक पत्र लिखा जिसमें सन्धि की प्रार्थना की गई थी।

वह पत्र किसी प्रकार अकबर के दरबारी पृथ्वीराज को मिला। उसने उसे पढ़ा और उसके उत्तर में तुरन्त राणा को एक पत्र लिखा, जिसके एक एक शब्द में संजीवनी शक्ति थी। राणा का प्रसुप्त पुरुषार्थ फिर जाग्रत हो गया और वे अपने कर्त्तव्य-पथ पर आरूढ़ बने रहे। आज भी उनका नाम सुन कर हमारा मस्तक श्रद्धा और आदर से झुक जाता है।

इस संसार में ऐसे मनुष्यों की संख्या अधिक मिलेगी, जिन्हें धन, यश, सुख और ऐश्वर्य पाने की तीव्र इच्छा तो है, पर वे यह चाहते हैं कि बिना कुछ प्रयत्न किये ही वे सम्पत्तिशाली हो जायँ; वे चाहते हैं कि बिना कुछ अध्ययन किए ही वे विद्वान् लेखक हो जायँ; परन्तु उनकी सब इच्छाएँ न तो कोई अर्थ ही रखती हैं और न कुछ महत्त्व ही। हाँ, यदि वे अपनी इच्छाओं को सम्मुख रख कर उनको पूरा करने के लिये दृढ़ परिश्रम आरम्भ कर दें, तो उनकी इच्छाएँ भी महत्त्वपूर्ण हो जायँगी और वे सफलता भी अवश्य प्राप्त कर लेंगे। इच्छा करना बुरा नहीं है, परन्तु इच्छा करने में और फल प्राप्त करने में बहुत अन्तर होता है। इच्छाओं को सामने रख कर दृढ़ परिश्रम करने पर ही फल की प्राप्ति होती है।

मानव की उन्नति और उद्धार के लिए संसार में कितने धर्म प्रचलित हो चुके हैं। इन धर्मों के संस्थापकों व प्रवर्त्तकों ने बहुत कष्टों को सहन किया व बहुत विरोध सहा, परन्तु अपना कार्य न छोड़ा। अपनी जान

हथेली पर रखकर वे लोग दृढ़ता से अपने सिद्धान्तों का प्रचार करते रहे। इसी कारण से सफल हुए और उनके धर्म आज तक हमारा पथ-प्रदर्शन करते हैं। मुसलमानों के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद का जीवन जिन्होंने पढ़ा होगा, वे ही उनकी कठिनाइयों का अनुमान कर सकते हैं। किन-किन कष्टों के बीच उन्होंने इस्लाम धर्म का प्रचार किया। उनके विरोधी ऐसे कट्टर थे कि सदैव उनकी जान लेने के प्रयत्न में रहते थे। फिर भी वे अपने मार्ग से विचलित न हुए। अपने इस पुरुषार्थ के कारण ही वे अपने धर्म के अनुयायियों की संख्या बढ़ाने में सफल हुए।

गौतम बुद्ध ने दर्शनशास्त्र में पढ़ा था कि "तीनों प्रकार के दुःखों की निवृत्ति अत्यन्त पुरुषार्थ है।" जीवन की करुणा से वे विचलित हो उठे थे। वे संसार को दुःखों से छुड़ाने का कोई सीधा और सरल मार्ग खोजना चाहते थे। इस उद्देश्य से वे उस 'अत्यन्त पुरुषार्थ' को प्राप्त करने के लिये तैयार हो गए। उन्होंने राज-वैभव छोड़ा, युवती और परम सुन्दरी पत्नी छोड़ी, एकमात्र पुत्र छोड़ा और वन में जाकर तपस्वी का व्रत ग्रहण किया। यह उनके पुरुषार्थ ही का परिणाम है कि संसार में बौद्ध धर्म के आज भी लाखों अनुयायी हैं। उनके सिद्धान्त भारत से बाहर भी अपनाए गए थे।

ईसाई धर्म के प्रचारक हज़रत ईसामसीह को भी बहुत विपत्तियों और विरोधों का सामना करना पड़ा था। उन्हें तो अन्त में उनके विरोधी यहूदियों ने सूली पर चढ़ा दिया था; परन्तु क्या यीशू अपने प्रयास में सफल नहीं हुए? अवश्य हुए। आज संसार के समस्त धर्मों में से एक तिहाई जनता ईसाई मत पर ही विश्वास रखती है। यह बात अवश्य सच है कि यीशू अपनी सफलता अपने नेत्रों से नहीं देख गए। परन्तु वे सफल अवश्य हुए, इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है।

आर्यसमाज के प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने लोक-कल्याण को अपने जीवन का व्रत ही बना लिया था। इसी भावना की पूर्ति के लिये

वे जिस पुरुषार्थ से अग्रसर हुए थे, वह सर्वविदित है। यदि वे ऐसे पुरुषार्थी न होते तो आज हमारे देश में स्वतन्त्रता की भावना की जो व्यापक लहर बह रही है; उसका कहीं पता भी न होता। इसी पुरुषार्थ की वेदी पर ही अन्त में उन्हें बलिदान भी हो जाना पड़ा था।

ऊपर के उदाहरण हमें बतलाते हैं कि पुरुषार्थ करने वाले को सफलता अवश्य प्राप्त होती है। हम सफलता चाहते हैं तो पुरुषार्थ करें।

आलसी मनुष्य परिश्रम करने से सदैव घबराते हैं। वे कभी परिश्रम नहीं करते, यद्यपि उनकी भी इच्छा यही रहती है कि सफल हो जायँ। परिश्रम किए विना सफलता किस प्रकार मिल सकती है? सफलता परिश्रम का फलमात्र है। सफलता और परिश्रम का फल व वृक्ष का सम्बन्ध है। यदि वृक्ष ठीक से लगाया गया है तो फल भी मीठा मिलेगा। साथ ही वृक्ष जितना बड़ा होगा, फल भी उतने ही अधिक देगा।

कहावत प्रसिद्ध है कि—"हथेली पर सरसों नहीं जमती।" अभिप्राय स्पष्ट है कि प्रत्येक कार्य उचित प्रकार से करने पर अपने समय पर फलदायी होता है। सब धीरे-धीरे होना चाहिये। इसी प्रकार सफलता प्राप्त करने के लिए परिश्रम भी प्रतिदिन थोड़ा-थोड़ा होना चाहिए। किसी काम को पूरा करने के लिए आप दो दिन तो बहुत परिश्रम करते हैं, परन्तु तीन दिक परिश्रम बन्द रखते हैं, यह रीति ठीक नहीं। परिश्रम प्रतिदिन एक नियम से हो तभी अखरता नहीं और बहुत कुछ काम भी हो जाता है।

किसी सफल मनुष्य के जीवन-चरित्र को पढ़कर आप कहते हैं—"उसे तो अनुकूल परिस्थितियों ने सहारा दिया, था उसे किसी प्रकार की बाहरी सुविधाएँ मिल गईं, इस कारण ही वह सफल हुआ। यदि हमें भी ऐसी सुविधाएँ मिल जायँ तो........।" इस कथन में क्या भूल है, इसका आप सम्भवतः अनुभव नहीं करते। परिस्थितियाँ किसी को निमन्त्रण नहीं देतीं। मनुष्य स्वयं उन्हें पकड़ता और अपने अनुकूल बना लेता है।

बाहरी सुविधाएँ भी मिला नहीं करतीं, प्राप्त की जाती हैं। इस प्रकार भाग्य भी किसी व्यक्ति-विशेष का साथ नहीं देता। वह उन्हीं की सहायता करता है; जो अपनी सहायता स्वयं करते हैं और जो पुरुषार्थ द्वारा भाग्य को अपने ही पक्ष में घसीट लाते हैं।

देखिए और तुलना कीजिए कि किसी सफल मनुष्य में और आप में क्या अन्तर है। उसे पूरा करने की चेष्टा कीजिये। आप उस मनुष्य से भी अधिक सफल हो सकेंगे। मेरे विचार से आप दोनों में यही अन्तर होगा कि आप न तो उसके समान दृढ़-संकल्प होंगे और न ही उसके समान दृढ़ परिश्रमी---यह अन्तर बहुत बड़ा नहीं है। इसे शीघ्र ही दूर किया जा सकता है।

महात्मा गांधी जब बैरिस्टरी पास करके विलायत से लौटे थे, तब किसी ने उनसे प्रश्न किया कि आप क्या होना चाहते हैं? उन्होंने उत्तर दिया कि—"मैं सर फ़ीरोज़शाह मेहता जैसा सफल वकील होना चाहता हूँ।' गाँधीजी ने स्वयं लिखा है कि "उन दिनों मुझे वे उन्नति के शिखर पर दिखाई देते थे, मैं अपने को पहाड़ की तली में खड़ा अनुभव करता था।"

वह अन्तर कहाँ रहा? गान्धीजी फ़ीरोज़शाह मेहता नहीं बन सके यह ठीक है; पर अपने पुरुषार्थ से वे जिस शिखर पर जा पहुँचे, उसकी ऊँचाई उससे कहीं अधिक है, जिस पर फ़ीरोज़शाह मेहता को उन्होंने देखा था।

हम में से अधिकांश 'हेतुहेतुमद्‌भूत' होते हैं। मेरा अभिप्राय यह है कि वे प्रायः इस प्रकार की बातें किया करते हैं कि "यदि ऐसा होता तो मैं ऐसा कर डालता।" इस 'यदि' पर एक विद्यार्थी की याद आती है जो दसवीं कक्षा में पढ़ता था। वह गणित में बहुत ही कमज़ोर था। वह सदैव यही कहता था कि यदि मुझे गणित की परीक्षा न देनी पड़े तो मैं प्रथम श्रेणी में पास हुआ करूँ। इस गणित के कारण ही मुझे तृतीय श्रेणी मिलती है। दसवीं कक्षा पास करने के बाद उसने गणित छोड़ दिया और अर्थशास्त्र ले लिया। वह समझता था कि गणित छोड़ देने पर वह अपने को बहुत तीव्र

बुद्धि प्रमाणित कर सकेगा। पर ऐसा हुआ नहीं। छमाही में उसको बहुत ही कम अंक प्राप्त हुए। अब उसमें कहना आरम्भ कर दिया कि—"अर्थशास्त्र मेरी समझ से बाहर है। मैं इसे नहीं समझ सकता। इसके कारण ही मुझे इतने कम नम्बर मिले हैं। यदि मैं अर्थशास्त्र की जगह अन्य विषय लेता, तो मेरे प्रथम श्रेणी योग्य नम्बर आते।" अस्तु, इण्टरमीडियेट भी वह किसी न किसी प्रकार खींच ही ले गया। बी० ए० में उसने अर्थशास्त्र भी छोड़ दिया, क्योंकि उसे यह विषय गणित के समान ही कठिन लगता था। परन्तु अब उसे अँग्रेजी-साहित्य कठिन लगने लगा। अब वह कहता कि यह अँग्रेजी-साहित्य ही मेरे लिए मुसीबत बन रहा है। यदि इससे पीछा छूट सकता तो मैं कालिज का एक अच्छा छात्र बन जाता। इस प्रकार अपने समस्त छात्र-जीवन में वह 'हेतुहेतुमद भूत' ही बना रहा। क्या हम भी इसी प्रकार की बातें नहीं करते हैं? क्या हम वर्तमान में निवास करते हैं? हम में से बहुत से ऐसे ही हैं। जीवन-संग्राम में पहली कठिनाई के सामने आते ही हम उसका वीर की भाँति सामना न करके कायर की भाँति पीछे हट जाते हैं। इससे हम जीवन भर कठिनाइयों से डरते रहते हैं, छोटी-सी कठिनाई भी हमें बहुत भयानक प्रतीत होती है। इस प्रकार हमारे सफलता के मार्ग में बहुत बाधा पड़ती है।

इसके विपरीत यदि हम अपनी पहली कठिनाई का दृढ़ता से सामना करें और उस पर साहसपूर्ण विजय प्राप्त करलें, तो आगे जीवन में हम अपनी अन्य बाधाओं को भी दूर कर सकते हैं। पहली विजय से हमें साहस और अनुभव दोनों मिलते हैं। इन दोनों से लाभ उठा कर हम कठिनाइयों को लाँघते और दृढ़ परिश्रम करते हुए सफलता पा सकते हैं।

जिस प्रकार उपर्युक्त विद्यार्थी को अपने भीतर छिपी हुई बड़ी कमजोरी का पता न था, उसी प्रकार हम में से बहुतों को भी अपने भीतर छिपी कमजोरी का पता नहीं लगता। उस कमोजरी को निकाल डालना

आवश्यक है, तभी 'यदि' से छुटकारा मिल सकता है। और जब तक "यदि" से पूरा छुटकारा नहीं मिलता, तब तक हम वर्तमान में कैसे अपनी प्रतिष्ठा कर सकते हैं।

'यदि' के प्रेमियों को अपने भीतर बिखरी हुई शक्ति का ज्ञान नहीं होता। उस शक्ति को जगा कर, वे अपने पुरुषार्थ-द्वारा उन विषयों में पारंगत बन सकते हैं, जिन्हें वे कठिन मानते हैं।

हम लोग अपनी छिपी हुई शक्ति से अभिज्ञ होते हुए भी, उसे एकत्र कर काम में लगाना नहीं जानते। इसीलिए उपयुक्त अवसर के उपस्थित होने पर परिश्रम न कर केवल यही सोचते रह जाते हैं कि—यह काम बहुत ही कठिन है, हमारी सामर्थ्य से बाहर है। हम इसे किसी प्रकार नहीं कर सकते। ऐसे समय, जब कि आगे बढ़ने में झिझक रहे हों, हमें चाहिये कि हम अपने अन्दर रहने वाली उस महती शक्ति की सत्ता का अनुभव करें, जो पल में सृष्टि का निर्माण और लय कर सकती है। उस शक्ति के समुचित प्रयोग-द्वारा क्या नहीं किया जा सकता ?

यदि आज की सभ्यता के साधनों के आविष्कर्त्ता उस समय यह विचार कर लेते कि—यह काम दुरूह और असम्भव है; तो क्या हम इतने आविष्कारों से लाभ उठा सकते थे ? यदि हमारी तरह वे भी सोचते रह जाते कि—ये काम किस प्रकार किए जा सकते हैं, हो ही नहीं सकते, हम में इतनी सामर्थ्य नहीं कि हम इसे पूरा कर सकें, तो आज हम इस बीसवीं शताब्दी में, अपनी सहायता के इन साधनों से अनभिज्ञ ही रहते। परन्तु नहीं, उन्होंने अपने आविष्कारों के विषय में सोचा; सब विघ्न-बाधाओं को पार करते हुए वे दृढ़ता से परिश्रम करते रहे। यह उनके पुरुषार्थ का ही परिणाम है, जिसे आज हम इतने विशाल रूप में अपने सम्मुख देखते हैं।

वायुयान का आविष्कार होने से पहले यह कल्पना करना कि आकाश में उड़ा भी जा सकता है, पागलों का ही काम समझा जाता था। यदि

वायुयान के आविष्कारक भी यही धारणा कर लेते कि आकाश में पक्षियों की भाँति उड़ना असम्भव है, तो आज हम वायुयान के आविष्कार से वंचित रहते। इसी प्रकार भाप से मनचाहा कार्य लिया जा सकता है, इस बात को असम्भव समझा जाता तो जेम्सवाट, जार्ज स्टीफेन्सन और गर्ना कभी सफलता प्राप्त न कर सकते, तथा हमें इस काल में भी उन्हीं कठिनाइयों का सामना करना पड़ता जिनका प्राचीन काल के मनुष्यों को करना पड़ता था।

भटके हुए जहाजों को मार्ग दिखलाने वाले प्रकाश-तम्भ, गहरी नदियों के ऊपर विशालकाय पुल, विद्रोही नदियों के बाँध, गगनचुम्बी इमारतें, हिलते हुए बगीचे आदि समस्त आश्चर्य में डालने वाली वस्तुएँ हमें बतलाती हैं कि, असम्भव कार्य भी पुरुषार्थ द्वारा पूर्ण किए जा सकते हैं। ताजमहल, कुतुबमीनार आदि हमें यही शिक्षाएँ देते हैं कि—संसार में असम्भव कुछ भी नहीं है। जो कठिन है, वह परिश्रम द्वारा सुगम किया जा सकता है। दृढ़ परिश्रम करने से मार्ग की बाधाएँ सुविधाओं में परिवर्तित हो जाती हैं। सफलता के मार्ग के काँटे स्वयं फूल बन जाते हैं। सफलता स्वयं ही सामने आ जाती है, यदि पुरुषार्थ का अमोघ अस्त्र हाथ में रहे।

बहुत से मनुष्य किसी काम को देखकर कहते हैं—"मैं इस काम को करने के विषय में सोचूँगा, अथवा मैं इसे पूरा करने की चेष्टा करूँगा।" ऐसे मनुष्य कभी काम को पूरा नहीं कर सकते। वे सोचते ही रह जाते हैं। मेरा तात्पर्य यह नहीं कि किसी काम को आरम्भ करने के पूर्व उसके विषय में सोचा ही न जाय—काम को बिना सोचे-समझे आरम्भ कर दिया जाय। नहीं, किसी काम को हाथ में लेने से पहले उसके ऊपर गम्भीरता-पूर्वक विचार अवश्य करना चाहिए। बिना सोचे-समझे किसी काम को करने के लिये उद्यत नहीं होना चाहिए। परन्तु मेरा यह भी तात्पर्य नहीं है कि अपना समस्त समय उस कार्य को सोचने ही में नष्ट कर दिया जाय। हमें तो शीघ्र निर्णय करने वाला होना चाहिए। जिस काम को हम अपनी

सोचें का, व अपने लिए उचित समझें, उसको आरम्भ करने में बहुत आगा-पीछा नहीं करना चाहिये। अधिक सोचने से चित्त डाँवाडोल हो जाता है, परिणाम स्वरूप हम उस कार्य को करने में समर्थ नहीं हो पाते।

अपनी सफलताओं और अपनी कमियों को पुरुषार्थ द्वारा दूर किया जा सकता है। इस बात की शिक्षा हमें डेमाँस्थनीज़ का जीवन देता है। डेमाँस्थनीज़ यूनान का प्रसिद्ध वक्ता हो गया है। कहते हैं कि आरम्भ में उसकी आवाज़ स्त्रियों जैसी थी। उसके भाषण का श्रोताओं पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता था। उसके विचार बहुत उत्तम रहते थे, परन्तु अपनी ज़नानी व प्रभावहीन आवाज़ के द्वारा वह जनता को ज़रा भी प्रभावित नहीं कर पाता था। अपनी इस कमी को दूर करने के लिए उसने समुद्र-तट पर जाना आरम्भ कर दिया। वहाँ एकान्त में वह समुद्र की गर्जन में अपनी ध्वनि मिलाया करता था। इसका परिणाम यह हुआ कि कुछ ही दिनों में उसकी आवाज़ भी उतनी ही रौबीली और प्रभावशालिनी हो गई और आज तक उसका नाम एक प्रसिद्ध वक्ता के रूप में प्रख्यात है।

यूजेन सैण्डो की जीवनी से परिचित मनुष्य जानते होंगे कि वह अपनी बाल्यावस्था में बहुत ही दुर्बल व रोगी था। एक बार वह अपने पिता के साथ अजायबघर गया। वहाँ उसने रोम की गैलेरी में प्राचीन काल के बलिष्ठ पुरुषों की मूर्तियाँ देखीं। उसे विश्वास न हुआ कि ऐसे बलिष्ठ मनुष्य भी हो सकते हैं। उसके पिता ने उसे विश्वास दिलाया कि प्रतिदिन व्यायाम करने से शरीर कितना ही बलिष्ठ बनाया जा सकता है। इससे बालक सैण्डो बहुत प्रभावित हुआ और उसने व्यायाम करना आरम्भ कर दिया। प्रति दिन नियमित रूप से व्यायाम करने के कारण उसके रोग दूर हट गए, उसके शारीरिक अवयवों का विकास हुआ और वह बहुत हृष्ट-पुष्ट व बलशाली बन गया।

भारतवर्ष के हॉकी के प्रसिद्ध खिलाड़ी ध्यानचन्द बचपन में खेलों के

प्रति बहुत उदासीन थे। वे कभी कोई खेल नहीं खेलते थे। बाद में उन्होंने हॉकी खेलने का अभ्यास करना आरम्भ किया और कुछ ही समय में भारतवर्ष के प्रसिद्ध खिलाड़ियों में से हो गए।

ये सब उदाहरण सूचित करते हैं कि पुरुषार्थ के सामने कुछ भी असाध्य नहीं है--सब साध्य है। ईश्वर के घर से योग्यता व बुद्धि का पुलिन्दा लेकर कोई नही आता। सब लोग यहीं पर योग्य बनते हैं, दृढ़ परिश्रम करते हैं और अपने लक्ष्यों की पूर्ति करते हैं।

पुरुषार्थ का शुभ परिणाम किसी से छिपा नहीं है। संसार में जितने मनुष्य प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं, वे सब पुरुषार्थी थे और उनके जीवन के बारे में आप सब कुछ जानते हैं। महात्मा गाँधी और स्वर्गीय तिलक के सतत प्रयत्नों का परिणाम क्या आप से छिपा हुआ है? क्या आप महाराणा प्रताप के पुरुषार्थ के परिणाम से अनभिज्ञ हैं? क्या शिवाजी की हिन्दू धर्म के प्रति की गई अमूल्य सेवाओं का परिणाम आपको नहीं मालूम है? रणजीतसिंह के दृढ़ प्रयत्न और अखण्ड परिश्रम ने उन्हें क्या से क्या बना दिया था, यह सब को विदित होगा। तो अब बचा क्या रहता है? देखिये न एक मामूली गड़रिये के लड़के नादिरशाह को समस्त एशिया का स्वामी किसने बनाया था?—उसके बाहुबल ने। एक साधारण से लुटेरे हैदरअली को मैसूर का सम्राट् किसने बनाया?—उसके अखंड परिश्रम और सतत प्रयत्नों ने। नेपोलियन और हिटलर को साधारण सैनिकों से समस्त योरप का भाग्य-विधाता किसने बना दिया था?—उनके पुरुषार्थ ने। इस तरह के सैकड़ों उदाहरण इतिहास और जीवन के पृष्ठों से आप स्वयं चुन सकते हैं।

पुरुष तो पुरुष, इस भारतवर्ष में बहुत-सी वीरांगनाएँ पुरुषार्थ में पुरुषों से भी आगे निकल गई हैं। उनके कृत्यों को सुनकर आश्चर्य होता है और अपने ऊपर लज्जा होने लगती है कि हम कुछ भी नहीं कर रहे

हैं। ऐसी वीर देवियों में से दो-तीन देवियाँ तो सदैव ही स्मरणीय रहेंगी। पहली देवी गढ़मंडले की वीर रानी दुर्गावती थी, जो अपने राज्य की रक्षा के लिए अकबर की सेना से लड़ी थी और जिसमें उसने अपने प्राण भी दे दिए थे।

झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के विषय में तो कुछ कहना ही व्यर्थ-सा होगा। उस "अमिट निशानी" की कीर्ति तो बच्चे-बच्चे के मुँह से सुनी जा सकती है।

अहमदनगर की वीर रानी चाँद बीबी अकेली ही मुग़ल फ़ौज से लड़ी थी। घमासान युद्ध के मध्य में केवल उसकी ही तलवार चमकती हुई—असंख्य शत्रुओं का संहार करती दिखलाई देती थी। जब मुराद ने उसके क़िले की एक दीवार तोप के गोलों की बौछार से गिरादी और दूसरे दिन सुबह क़िले में प्रवेश करने का विचार कर लिया, तब उस साहसी रानी ने मशालों की रोशनी में रात भर काम करवा कर सुबह तक दूसरी दीवार खड़ी करादी। मुराद को यह देख कर बहुत आश्चर्य हुआ और हार कर उसने चाँद बीबी से सन्धि कर ली।

चरित्र-बल

जिनका चरित्र उदार है, उनके लिये समस्त पृथ्वी एक कुटुम्ब है।

—नीतिकार

धन खो जाने से विशेष हानि नहीं। स्वास्थ्य खो जाने से कुछ हानि है। चरित्र खो गया तो मानो सब कुछ गया।

चरित्र एक शक्ति है, प्रभाव है। यह मित्र उत्पन्न करता है। सहायक और संरक्षक प्राप्त कराता है। यह धन, मान और सुख का निश्चित मार्ग खोल देता है।

बिना चरित्र के धर्म, उपदेश, कविता, नाटक, चित्र, किसी का कोई महत्त्व नहीं।

'शीलं सर्वत्र वै धनम्'—शील सर्वत्र ही धन है।

जो मनुष्य अच्छा पद पाकर यह भूल जाता है कि मैं भी मनुष्य हूँ, वह देश को बड़ी हानि पहुँचाता है।

मनुष्य के अधिकार में ईश्वर ने जितनी वस्तुएँ दी हैं, चरित्र उन सब में बढ़ कर है। सदाचारी की गरीबी भी आलोकित हो उठती है। सदाचारी की सब ही प्रतिष्ठा करते हैं; उससे न कोई घृणा करता है न कोई उसका शत्रु ही होता है। जिस मनुष्य को अपनी प्रतिष्ठा का ख़्याल रहता है उसका सब आदर करते हैं।

जिसमें चरित्र-बल होता है उसमें आत्म-त्याग की भावना अवश्य पाई जाती है। वह प्रतिदिन की छोटी-छोटी बातों में स्वयं असुविधा और कष्ट का सामना करता है, पर दूसरों को कष्ट न पहुँचे, इसका सदैव ध्यान रखता है। रेल की खिड़कियों पर कितनी ही भीड़ क्यों न हो, वह दूसरे को

धक्का देकर कभी घुसने का प्रयत्न नहीं करेगा। भीड़ से एक प्रकार का समझौता करके ही वह अपने लिए स्थान प्राप्त करेगा। यदि असावधानी के कारण उससे किसी को धक्का भी लग जाय, तो वह तुरन्त क्षमा-याचना कर लेगा।

नम्रता चरित्र-बल की सच्ची कसौटी है। सुचरित्र अपने से बड़ों का आदर तो करते ही हैं, अपने से छोटों और बराबर वालों का भी आदर करते हैं। सदाचारी अपने अपराध के लिए पश्चात्ताप करने और क्षमा माँगने तथा दूसरे के अपराध को क्षमा करने के लिए सदा तैयार रहता है। वह अपने धन, विद्या और बल पर कभी अभिमान नहीं करता। वह यह भी नहीं चाहता कि दूसरे उसके विचार को जबर्दस्ती ग्रहण कर लें। यह अवश्य है कि वह उपयुक्त अवसर पर अपने विचार निर्भयता-पूर्वक प्रकट कर देता है।

संसार में ऐसे अनेक व्यक्ति हैं जो केवल ईमानदारी को अपना साथी बनाते हैं। उनका जीवन ईमानदारी का सच्चा उदाहरण होता है। उनके रहन-सहन, बात-चीत, कार्य और वाणी से ईमानदारी प्रकट होती है। ईमानदारी ही उन्हें सुन्दर और कुलीन, प्रतिष्ठित और महान् बना देती है।

स्वेट मार्डेन ने ईमानदार लड़के की जो कहानी दी है, वह हमें चिरकाल तक स्मरण रहेगी। वह लड़का बहुत गरीब था। उसके पैर नंगे थे और शरीर पर चिथड़े भर थे। वह दियासलाई बेचकर अपना निर्वाह करता था। एक राह चलते सज्जन को दियासलाई दिखाते हुए उसने कहा—

"श्रीमान्‌जी, दो-चार डिबिया दियासलाई खरीद लीजिये।"

"नहीं भाई, मुझे नहीं चाहिए।" राह चलते सज्जन ने कहा।

"ले लीजिए, एक पैसा तो दाम ही है।" कह कर लड़का उसके मुँह की ओर देखने लगा।

"मुझे इनकी जरूरत नहीं है।"

"अच्छा, एक पैसे की दो डिबिया ले लीजिये।"

किसी तरह लड़के से पिंड छुड़ाने के लिए उस भले आदमी ने एक डिबिया ले ली, पर जब देखा कि पास में पैसा नहीं है तो डिबिया वापस कर दी और कहा "मैं कल खरीद लूँगा।" लड़के ने फिर नम्रता से कहा—"आज ही ले लीजिये; पैसे मैं भुनाकर ला दूँगा।"

बालक की बात सुनकर उन्होंने एक शिलिंग दे दिया। थोड़ी देर तक वे खड़े रहे, पर लड़का न लौटा। उन्होंने सोचा शायद अब बाक़ी के पैसे न मिलेंगे, और कुछ देर और राह देखकर वह अपने घर चले गये।

शाम को नौकर ने आकर खबर दी कि एक लड़का आपसे मिलना चाहता है। उत्सुकता से उन्होंने उसे अन्दर बुलाया। देखते ही समझ गये कि शायद यह उस लड़के का छोटा भाई है, क्योंकि यह उसकी अपेक्षा और भी अधिक चिथड़ों में लिपटा हुआ था। उसके शरीर में हड्डियाँ ही दीख पड़ती थीं, पर चेहरे पर एक प्रकार की चमक थी। थोड़ी देर चुप रहने के बाद उसने कहा—"क्या आपने ही मेरे भाई से दियासलाई की एक डिबिया खरीदी थी?"

"हाँ"

"लीजिये ये बाक़ी के पैसे। वह खुद नहीं आ सका। उसकी तबीयत ठीक नहीं है। एक गाड़ी से वह टकरा गया, और गाड़ी उसके ऊपर से निकल गई। उसकी टोपी, डिबियाँ और आपके बाक़ी पैसे न मालूम कहाँ गए और उसकी दोनों टाँगें टूट गईं। वह अच्छा नहीं है डाक्टर कहते हैं कि वह बचेगा नहीं। उसने किसी तरह ये पैसे भेजे हैं।" कहकर बालक रोने लगा। उस भद्र पुरुष का हृदय पिघल गया। वह उसे देखने गए।

जाकर देखते हैं कि वह अनाथ बालक एक बूढ़े शराबी के घर में रहता है। लड़का फूस पर लेटा हुआ था। इन्हें देखते ही वह पहचान गया और लेटे-लेटे बोला—"मैंने पैसे भुना तो लिये थे, लेकिन लौटकर आ ही रहा था कि घोड़े से टकरा कर गिर पड़ा और मेरी दोनों टाँगें टूट गईं।" इतना कहकर बालक दर्द से कराहते हुए अपने छोटे भाई से

बोला—"प्यारे भैया, मेरी तो मौत आ रही है, पर तुम्हारा क्या होगा ? तुम्हारी देख-भाल कौन करेगा ? मेरे न रहने पर हाय तुम क्या करोगे !" यह कहते हुए उसने उसे गले से लगा लिया। उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे।

उक्त सज्जन ने दुखी बालक के हाथ को अपने हाथ में लेकर कहा—"बेटा, तुम चिन्ता मत करो। मैं तुम्हारे भाई की रक्षा करूँगा।"

बालक समझ गया। उसकी शक्ति क्षीण हो रही थी, फिर भी बची-खुची शक्ति के बल पर उसने उनकी ओर देखा। उसकी आँखों से धन्यवाद और कृतज्ञता के भाव साथ-साथ निकल रहे थे! हृदय कुछ कहना चाहता था, पर शब्द मुँह से न निकलते थे। उसी समय उसकी आत्मा जगत्पिता की गोद में जा पहुँची।

भगवान् ने उस छोटे-से घायल मरते हुए लड़के को बहुत बड़े सिद्धान्त सिखाये थे। बड़े-बड़े धनियों की अपेक्षा वह ईमानदारी, सचाई, महत्ता और सहृदयता के मूल्य को कहीं अधिक समझता था। ये ही सद्गुण मनुष्य को देवता बना देते हैं। इन्हीं की बदौलत मनुष्य इस लोक तथा परलोक में पूजे जाते हैं।

जस्टिस महादेव गोविन्द रानाडे घर से पैदल कचहरी की ओर जा रहे थे। राह में एक बुढ़िया लकड़ी का गट्ठा रक्खे बैठी थी। बोझा भारी था और वह उसे सिर पर नहीं रख पाती थी। बुढ़िया यह नहीं जानती थी कि उसके सामने से जाने वाला मनुष्य हाईकोर्ट का जज है। इन्हें साधारण वस्त्रों में देखकर वह बोली—"भैया, जरा मेरे बोझे को हाथ लगा देना।" रानाडे ने बोझा उठाकर बुढ़िया के सिर पर रख दिया।

पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर साधारण धोती-कुर्ता पहने स्टेशन पर किसी कार्यवश टहल रहे थे। गाड़ी में से एक अप-टु-डेट बाबू साहब उतरे और इन्हें कुली समझ कर कहने लगे—"यह सूटकेस प्लेटफ़ार्म से बाहर ले चलो।" विद्यासागर ने सूटकेज़ लेकर स्टेशन के बाहर पहुँचा दिया। जब

बाबू साहब पैसे देने लगे तब विद्यासागर ने पैसे लेने से इनकार कर दिया। बाबू साहब ने यह सोचकर कि पैसे कुछ कम हैं इसीलिए कुली इनकार करता है- कुछ और पैसे उनमें मिलाये। पर विद्यासागर ने फिर भी न लिये और कहा--"आपको मेरी सहायता की आवश्यकता थी इसलिए मैंने सहायता कर दी। पैसे मुझे नहीं चाहिएँ।" कुछ देर बाद ज्ञात हुआ कि वे महाशय विद्यासागरजी से ही मिलने कहीं दूर से आये थे।

सच्चरित्र को अपनी इज्ज़त का बहुत ख़्याल रहता है। इसीलिये वह बड़ी सावधानी से दुष्कर्मों से बचता है। वह जो कहता है, उसमें ईमानदारी के उच्च आदर्श पर ध्यान रखता है। न वह किसी को धोखा देता है और न अपने कर्त्तव्य में टालमटूल करता है। जो बात उचित होती है, उसी के लिए वह 'हाँ' करता है, अन्यथा वीरता के साथ 'नहीं' कह देता है।

ड्यूक आफ़ वैलिंगटन के जीवन की एक घटना सच्चरित्रता का अच्छा उदाहरण है। असाई के युद्ध का अन्त हो जाने पर एक दिन निज़ाम का मंत्री वैलिंगटन के पास आया और उसने यह जानना चाहा कि निज़ाम और मराठों के बीच जो सन्धि होने जा रही है, उसमें निज़ाम को क्या मिलेगा? वैलिंगटन सन्धि की सब शर्तों को जानता था। इस रहस्य को जानने के लिए निज़ाम का मन्त्री उसे पन्द्रह लाख रुपये देने को तैयार था। वैलिंगटन कुछ देर तक उस मन्त्री के मुँह की ओर चुपचाप देखता रहा, फिर बोला--"अच्छा, तो तुम इस भेद को छिपा सकते हो; किसी से कहोगे तो नहीं?" मन्त्री ने विश्वास दिलाया कि वह अवश्य इस भेद को छिपा सकता है और किसी से कहेगा नहीं। वैलिंगटन हँसकर बोला--"बस, ऐसा ही मुझे भी समझो। जिस तरह तुम अपना भेद छिपा सकते हो, उसी तरह मैं भी अपना भेद छिपा सकता हूँ। यह कहकर वैलिंगटन ने मन्त्री को झुक कर प्रणाम किया। बेचारा मन्त्री लज्जित हो वहाँ से तुरन्त चल दिया।

सच्ची सुजनता का धन और पद से अनिवार्य सम्बन्ध नहीं है। निर्धनों

में भी सच्चरित्र और सज्जन पाए जाते हैं। पहाड़ी कुली इस दिशा में उदाहरण-स्वरूप हैं। आप पहाड़ के किसी स्थान को जाइए इस प्रकार के कुली आपको मिलेंगे। उनका काम बहुत कुछ मैदान के कुलियों के समान ही होता है, केवल भेद ईमानदारी का होता है। मैदान के कुलियों की यह कुप्रसिद्ध है कि मालिक की आँख चूकते ही वे माल मार देते हैं। पहाड़ी कुली अपनी ईमानदारी के लिए प्रसिद्ध होते हैं। ठहराई मजदूरी पर वे आप का माल निश्चित स्थान पर पहुँचा देंगे, और जब तक आप वहाँ न पहुँचेंगे वे आपके सामान को लिए बैठे रहेंगे। क्या मजाल कि आपकी कोई चीज इधर-उधर हो जाय। पहाड़ी मार्ग की ऊँची-नीची घाटियों में यदि वे माल लेकर छिप जायँ तो उनका पता भी लगाना पथिक के लिए असम्भव हो जाय! पर उनकी इमानदारी ही पथिक की निश्चिन्तता का आधार रहती है।

जिसने सब कुछ खो दिया हो पर साहस, सुजानता, आशा, धर्म-परायणता और आत्म-सम्मान को हाथ से न जाने दिया हो वह फिर भी धनाढ्य है। क्योंकि उसका लोग विश्वास करते हैं। उसे छोटी-छोटी चिन्ताएँ कष्ट नहीं दे सकतीं वह अपने सज्जन होने पर गर्व कर सकता है।

इटली की एक बड़ी नदी में बाढ़ आ गई थी। नदी-तट पर दर्शकों की भीड़ लगी थी। नदी का पुल बह गया था। सारा भू-भाग जल-मग्न हो गया था। केवल बीच का एक टीला शेष रह गया था, जिस पर एक घर बना था। बाढ़ बढ़ती पर थी। घर वाले सहायता के लिए पुकार रहे थे। भीड़ में से एक ने कहा—"यदि कोई उस घर के सब मनुष्यों को बचा दे तो मैं सौ मुहरें पुरस्कार में दूँगा।"

यह सुनकर एक युवा मल्लाह अपनी नाव उस घर की ओर ले गया और सबको उस पर चढ़ाकर ले आया।

उस पुरस्कारदाता ने सौ मुहरें देते हुए कहा—"तुमने बहुत साहस

का काम किया है, यह लो अपना पुरस्कार।" पर उस युवा ने अपना हाथ पीछे खींच लिया और कहा—"मैं अपना पुरस्कार पा चुका हूँ। यह धन आप बाढ़-पीड़ितों की सहायता के लिये खर्च कीजिए।"

संसार को ऐसे चरित्रवानों की आवश्यकता सदैव रहेगी जो धन के लिये अपनी राय को नहीं बेचते; जो स्वर्ग से गिर जाने पर भी मार्गच्युत नहीं होते; जो अपने काम को समझते हैं और उसमें दत्तचित्त रहते हैं; जो हृदय की भावनाओं पर पर्दा नहीं डालते और जो सच्ची अवस्था को निस्संकोच प्रकट कर देते हैं।

सभी समाजों और देशों में ऐसे व्यक्ति होते आये हैं जो मुँह से बात निकालने से पहले ही श्रोताओं के मन पर विजय प्राप्त कर लेते हैं। उनका प्रभाव उनकी योग्यता से अधिक होता है। उनके चरित्र की ज्योति उनके नेत्रों से उद्भासित होती रहती है जो वशीकरण का काम करती है।

तुर्कों ने जब कौशूढ को इस्लाम ग्रहण करने की शर्त पर आश्रय देने की बात कही थी, तब उस वीर ने उत्तर दिया था—"मृत्यु और लज्जा, इन दो में से किसे स्वीकार किया जाय, इस उलझन में मैं कभी नहीं पड़ा। मृत्यु अनिवार्य है तो उसके भय से लज्जा से सिर क्यों नीचा किया जाय। एक दिन मैं एक बड़े राज्य का स्वामी था। आज मेरे पास ऐसा कुछ भी शेष नहीं है जिससे मैं अपना और अपने बच्चों का पालन कर सकूँ। ईश्वर के उद्देश्य की पूर्ति होने दो। मैं मरने को तैयार हूँ। मेरे हाथ खाली अवश्य हैं पर इन पर कालिमा कभी नहीं लगी है।"

किसी देश का इतिहास उस पर शासन करने वाले राजाओं का ही इतिहास नहीं होता। राजाओं की विशाल-सेनाएँ और बड़ी-बड़ी तोपें काल और युग का निर्माण नहीं करतीं। सच्चा इतिहास महान् पुरुषों के चरित्रों से पूर्ण होता है। वे महापुरुष आनेवाली सन्तान के लिए सुख और सुविधा की वस्तुएँ तैयार करते हैं; समुद्र को जोड़कर सीधा मार्ग बनाते हैं। अच्छे-अच्छे

ग्रन्थों की रचना करते हैं। सत्य को खोज निकालते हैं। वे ही युग-निर्माता हैं।

शिष्टाचार कार्य का आभूषण है। प्रत्येक काम के करने का और प्रत्येक बात के कहने का एक ढंग होता है, जिससे उस कार्य या उस बात की सुन्दरता बहुत अधिक बढ़ जाती है और कुरूपता दब जाती है। कुछ मनुष्य अपने रूखेपन पर अभिमान करते हैं। उनके व्यवहार को कोई पसन्द नहीं करता, वे चाहे कितने ही सच्चरित्र और योग्य हों। अपना अपमान कोई सहन नहीं कर सकता। न अपमान करनेवाले को कोई अच्छी निगाह से देखता ही है। मान से मान मिलता है। अपमान से तो अपमान ही मिलेगा। अपमान सहकर भी जो मान देते है वे आदर्श हैं।

कुछ मनुष्यों को अपने बड़प्पन का आवश्यकता से अधिक ख्याल रहता है। वे जो कुछ करते या कहते हैं, अपना बड़प्पन प्रकट करने के उद्देश्य से ही। छोटे-से-छोटे अवसर पर भी वे अपना बड़प्पन दिखाए बिना नहीं रहते। वे दूसरों के लिए जब कोई छोटा-सा भी काम करते हैं, तब इस ढंग से करते हैं मानों वे बड़ा भारी अहसान कर रहे हैं। व्यवहार में ऐसे मनुष्य प्रशंसा के पात्र नहीं बन सकते।

व्यवहार-जगत् में शिष्टाचार का विशेष महत्त्व है। अशिष्टता से समाज घृणा करता है। अति का शिष्टाचार भी केवल तमाशा दिखाई देता है। उच्च पद पर जो लोग कार्य करते हैं अथवा जिनके हाथ में बड़े-बड़े अधिकार हैं, वे यदि नम्र और चरित्रवान् हों तो जनता के बहुत प्यारे बन जाते हैं। इसके विपरीत घमण्डी, क्रोधी, कटुभाषी और घूँसखोर अधिकारी को लोग पीठ पीछे गालियाँ दिया करते हैं।

सदाचार बाहरी दिखावे की ही वस्तु नहीं है। जीवन के प्रत्येक क्षण से उसका सम्पर्क रहना चाहिए। सेवों से लदे सूने बाग़ में लड़के को अकेला खड़ा देखकर माली ने पूछा—"भले लड़के, तुम चुपचाप क्यों खड़े रहे! तुमने कोई फल तोड़कर क्यों नहीं खाया।" लड़के ने उत्तर

दिया।--"मैं अपने को धोखा नहीं दे सकता। यह समझकर भी कि मुझे कोई नहीं देखता, पाप करना बुरा है। अपनी आत्मा तो उसे देखती है। अपनी आँखों से अपने हाथों को चोरी करते देख क्या कम लज्जा आती है।"

विवेक बुद्धि ही ऐसे अवसरों पर हमारी सहायता कर सकती है। विवेक बुद्धि सतत अभ्यास और परिश्रम से पैदा होती है। प्रलोभन में पड़ कर विवेक बुद्धि के विपरीत चलने पर मनुष्य का पतन हो जाता है। उस का अन्तरात्मा उसे धिक्कारता है। उसे कहीं शान्ति नहीं मिलती।

मनुष्य आदतों की गठरी है। उसके चरित्र पर आदतों का सीधा असर पड़ता है। चरित्र और कुछ नहीं, आदतों का एक सामूहिक व्यक्तीकरण है। अर्थात् चरित्र का निर्माण छोटी-छोटी आदतों के मेल से होता है।

बटलर का कथन है—"मनुष्य के लिए यह आवश्यक है कि वह स्वयं को वश में रक्खे और प्रलोभनों का दृढ़ता से सामना करे। सदाचार की आदत इसी प्रकार पड़ती है। ऐसा करते-करते कुकर्म छूट जाते हैं और सदाचार का स्वभाव पड़ जाता है। मन को प्रलोभनों से निवृत्त करने के लिए अभ्यास और उदासीनता की आवश्यकता है। यह मत योगदर्शन के रचयिता पतंजलि का है। जिन आदतों का सम्बन्ध शरीर से होता है, वे बाह्य कारणों का परिणाम होती हैं। आदत डाल लेने पर काम कठिन नहीं लगता। वह काम चाहे भला हो या बुरा; आत्मा उस का साथ देने लगती है। आन्तरिक इच्छाओं का अनुवर्त्तन करने से भी आदत पड़ती हैं और दूसरों की आज्ञा का पालन करने से भी। विवेक का आधार इस दशा में भी लाभदायक होता है।

स्वेट मार्डेन ने लिखा है :—

"जो जैसा बोता है वह वैसा ही काटता है। बबूल के पेड़ में आम नहीं फलते। भले आदमियों की संगति आदमी को भला बना देती है और दुष्टों की संगति बुरा बनाए विना नहीं रहती। हम भले ही बुरे कृत्यों को

गुप्त रूप से करें और छिपकर दुष्टों से सम्बन्ध रक्खें, फिर भी समय आने पर ये बातें हमारे आचरण और चेहरे पर दिखाई दे ही जाती हैं।

हृदय की मूर्तियाँ हमारे नेत्रों से झाँकती हैं, हमारे चालचलन में दीखती हैं। चेहरों पर कुटिल हृदयों की छाया कुटिल ही पड़ती है और कोई शक्ति उसे दूर नहीं कर सकती। दुराचारपूर्ण जीवन के चेहरे के सामने कैसे चित्र आते हैं? वहाँ आपको घृणित दृश्य, विकारों की माँग और विजय के लिए होने वाले युद्ध, अनिश्चय और कष्टकारी पराजय दिखाई देगी। इसके विपरीत जिसने विकारों पर विजय पाकर संयम-पूर्ण जीवन बिताया है, जो अपनी शक्तियों को सुसंगठित रखकर आत्मसुधार में लगा रहा, उसके चेहरे से कैसी सुन्दर ज्योति निकलती है!

"मेरी दृष्टि में वही सब से बड़ा आदमी है, वही व्यक्ति महान् है जो मुझे मेरे आस-पास की बातों और प्रभावों के बन्धनों से मुक्त कर देता है, जो मेरी वाणी को स्वतन्त्र कर देता है और मेरे लिए सम्भावनाओं के दरवाजे खोल देता है।

"क्रोध से क्रोध ही उत्पन्न होता है और ईर्ष्या ईर्ष्या को ही जन्म देती है। विकार छूत की बीमारी से किसी तरह कम नहीं।"

समृद्धि

समृद्धि का आरम्भ मन से होता है। जो मन में समृद्धिशाली नहीं हैं, वे बाह्य जगत् में भी समृद्धिशाली नहीं हो सकते। हमारी सिद्धियों का बीजारोपण मन में होता है। पौदा जब उगकर डाल-पातवाला हो जाता है, तब वह बाहर दिखाई देता है। जब तक क्षेत्र तैयार न हो, तब तक यह आशा नहीं की जा सकती कि उसमें बोया हुआ बीज जमकर उचित और अभिलषित फल पैदा करेगा। हम प्रयत्न करें एक वस्तु के लिए और स्वप्न देखें दूसरी वस्तु के, यह मनःस्थिति हमें सफलता नहीं दे सकती।

जो कार्य हाथ में है उसमें एकाग्रता के साथ जुट जाने से ही सफलता प्राप्त होगी। ध्यान देने पर ज्ञात होगा कि यह बात कहने और सुनने में जितनी सीधी है, व्यवहार में उतनी नहीं। क्या हम अधिकांश में ऐसा ही नहीं करते? क्या हम अपने बाह्य और आभ्यन्तर को एक केन्द्र-बिन्दु पर स्थिर करके किसी कार्य में संलग्न होते हैं? क्या हमको सोते-जागते, खाते पीते और चलते-फिरते अपना लक्ष्य उसी भाँति अपने सामने दिखाई पड़ता है, जिस प्रकार अर्जुन को पक्षी का सिर दिखाई पड़ता था? यदि नहीं, तो निस्सन्देह हम में कुछ कमी है। हमें अपने मन को कुछ सिखाना है। यदि उसके भाव हमारे कार्य के अनुकूल नहीं चलते, हमारे कार्य और विचार में सामञ्जस्य नहीं है, तो हमें या तो वह कार्य रोक देना होगा, या अपने मन को झुकने के लिए विवश करना होगा।

"क्या करें हम ग़रीब हैं; हम दरिद्र हैं, हमारे पास पैसा नहीं, हम कैसे निर्वाह करें," ये वाक्य क्या उस मनुष्य को मन और वाणी में लाने चाहिएँ जो समृद्धिशाली होना चाहता है? इस का अर्थ तो केवल यह है कि

ऐसा कहकर हम अपनी अन्तरात्मा को शक्तिहीन कर रहे हैं, अपने दिल को कमजोर कर रहे हैं। पूर्व की ओर जाने के लिये हैं, पर पैर पश्चिम की ओर बढ़ा रहे हैं।

अपनी सफलता और योग्यता पर सन्देह करना अपने मन और शरीर में उन्नति-विरोधी तत्वों को इकट्ठा करना है। हमारी प्रवृत्तियाँ ठीक-ठीक एक दिशा की ओर ही चल पाती हैं। पूर्व को मुँह करके पश्चिम को नहीं पहुँच सकते। हीनता की भावनाएँ मन में लाकर महान् नहीं बना जा सकता, यदि महान् बनना है तो अपने मन, वचन और कर्म को तदनुकूल पहले बनाना पड़ेगा। हाथी शाल के वृक्ष में बँध सकता है, महानदी समुद्र में समा सकती है। समृद्धि के आनन्द-भवन में समृद्धि को ही स्थान मिल सकता है, रंक को नहीं।

"हम लाचार, ग़रीब और दरिद्र अपने भाग्य या परिस्थितियों से नहीं होते, अपनी भावनाओं के कारण होते हैं।" एक विद्वान् का कथन सत्य है। हमारे शास्त्रकारों ने भी कहा है—कि "सुख, समृद्धि और शान्ति अपने आप प्राप्त करने की वस्तुएँ हैं। ये न दैव से मिल सकती हैं और न दान से प्राप्त की जा सकती हैं।" 'हम अनन्त ऐश्वर्य के स्वामी हैं, हम दीन-हीन नहीं हैं'—हमारे महर्षि सदैव अपने मन में ऐसी भावनाओं को प्रश्रय दिया करते थे। जंगलों में वे एक कुटिया बनाकर रहते थे, एक लँगोटी से निर्वाह करते थे, फल-फूल और पत्र खाकर भूख मिटाते थे, पर मन में 'अहं ब्रह्मास्मि' और 'सोऽहमस्मि' का अनुभव करते थे। वे कितने महान् थे ? आज का संसार उनका कितना ऋणी है ?

रात को सोने से पहले कुछ देर तक शान्तिपूर्वक बैठ कर अपनी महत्ता पर, अपनी शक्तिमत्ता पर विचार कीजिये और अनुभव कीजिये कि आप उस सर्वशक्तिमान् के एक अंश हैं; आप अनन्त आनन्द के अधीश्वर हैं। सदैव इसी प्रकार के सुखमय स्वप्न देखिए। इसी प्रकार सदा

आनन्दमय नई-नई कल्पनाओं से अपने मन को स्फूर्ति-पूर्ण रखिए। इस प्रकार आपकी सारी शक्तियाँ आपके लक्ष्य की ओर उन्मुख हो जायँगी और आपको सफलता दिखाई देने लगेगी। अपनी अंतःशक्ति को प्रोत्साहित करते रहने के लिये यह आवश्यक है कि आप उन्हीं लोगों के पास बैठें-उठें जो सफलता के रहस्य को प्रत्यक्ष कर चुके हैं, जिनका प्रत्यक्ष का अनुभव है।

मन में हवाई क़िले बनाना निस्सार नहीं है। हमारे विचारों और कार्यों में घना सम्बन्ध है। पहले मन कुछ सोचता है, वह विचार वाणी द्वारा प्रकट होता है और हाथ-पैर उसे करने को उद्यत हो जाते हैं। मन जब सोचेगा ही नहीं तब हाथ-पैर क्या करेंगे? आपने पागलों को देखा होगा, उनका मन विचार नहीं कर सकता; उनके हाथ-पैर भी कुछ नहीं कर सकते।

हमारी कल्पनाएँ हमारे जीवन-भवन के नक़्शे हैं। नक़्शे पहले बनाए जाते हैं, फिर भवन बनते हैं। पर यह अच्छा नहीं कि नक़्शे ही बनाते रहें। ऐसा करने से विचार-शक्ति को प्रोत्साहन मिलता है, पर कार्य-शक्ति कुण्ठित हो जाती है, अतः विचार-शक्ति और कार्य-शक्ति में सामंजस्य रहना आवश्यक है। तभी हम सफल हो सकते हैं।

स्वप्न की शक्ति हमें ईश्वर ने इसलिये नहीं दी है कि हम उससे डरें। वह अपने पीछे सत्य को छिपाये है। वह दैव की अपूर्व देन है। वह हमें साधारण श्रेणी से उठा कर उच्च श्रेणी पर प्रतिष्ठित कराती है। हीन दशा से छुड़ा कर उन्नत बनाती है।

जो मनुष्य सदैव व्याधि, विपत्ति और दुर्दैव का ही विचार करता रहता है, उसे ये निश्चय प्राप्त होते हैं और ऐसा लगता है मानो ये उसे चारों ओर से हर समय घेरे रहते हैं। मनुष्य का निर्माण इसलिये नहीं हुआ है कि वह सदैव दुःख, निराशा, विपत्ति और पतितावस्था में पड़ा रहे; वह ईश्वर की सर्वोत्तम कृति है। वह अमृत-पुत्र है। उसका कर्त्तव्य है कि वह अपने को ऐसी स्थिति में रक्खे जो सम्मानपूर्ण हो।

'अहमिहानृतात् सत्यमुपैमि'—"मैं असत्य से सत्य को प्राप्त कर रहा हूँ; अज्ञान से ज्ञान की ओर जा रहा हूँ"—वैदिक काल की इस प्रार्थना में आत्मा के लिए कितना पुष्टिकर भोजन है।

अभाव और दरिद्रता मनुष्य की दैवी प्रकृति के अनुकूल नहीं हैं। अपने शरीर की सर्वाङ्गपूर्ण और सर्व-सुन्दर रचना को देखिए। वह सर्व-कार्यक्षम है। वह महान् और दिव्य वस्तुओं के लिए बनाया गया है, दरिद्रता के पंजे में फँस कर छटपटाने के लिए नहीं।

ऐसा रोना कभी मत रोइए कि—"हमें अमुक वस्तु का अभाव है। हमारे पास वे वस्तुएँ नहीं हैं जो दूसरों के पास हैं। हम वह काम नहीं कर सकते जो दूसरे कर सकते हैं।" ऐसे विचार भविष्य को अन्धकारमय बनाते हैं। अभाग्य पर विचार करना उसे मानो निमन्त्रण देकर बुलाना है। ऐसा विचार करते रहेंगे तो आपकी आत्म-शक्ति मूर्च्छित पड़ी रहेगी। आपके लिए वह अभीप्सित पदार्थों को आकर्षित न कर सकेगी।

समृद्धि के अंकुर पहले हमारे मन में ही उगते हैं, फिर इधर-उधर फैलते हैं। जहाँ पहले दरिद्रता का बीज बोया हो, उसी क्षेत्र में समृद्धि का बीज कैसे उग और पनप सकता है? दुर्दैव के विचार समृद्धि के मार्ग को रोक देते हैं। यदि हमें समृद्धिशाली बनना है तो दुर्दैव और दुर्भाग्य के विचारों को मन से निकाल देना होगा।

ग़रीबी अनिवार्य नहीं है। परमात्मा की सृष्टि अनन्त भाण्डार है। उसमें प्रत्येक का समान भाग है। ऐसे समृद्धि-भाण्डार में रहते हुए भी हम अपने को ग़रीब और निर्धन अनुभव करें, यह आश्चर्य की बात है।

विज्ञान ने सिद्ध कर दिया कि मनुष्य के विचारों में चुम्बक की शक्ति होती है। यदि हम दरिद्रता से डरते रहें, उसके भय से सदा काँपते रहें, तो यह आवश्यक है कि दरिद्रता और लाचारी हमारी ओर खिंचती चली आएँ।

दयानिधि भगवान् की यह इच्छा कदापि नहीं हो सकती कि उसका

पुत्र मनुष्य भूखों मरे, रोटी के एक टुकड़े के लिए परमुखापेक्षी बने। इस दुरवस्था का उत्तरदायित्व हमारे विचारों की संकीर्णता पर, हमारे आदर्शों की नीचता पर है।

हम अपनी सम्भावनाओं पर पूरा विश्वास नहीं करते। फल यह होता है, कि हमें जो मिलता है, वह अधूरा होता है, पूरा नहीं। हमें उस बच्चे से शिक्षा लेनी चाहिए जो रोटी पाकर उसे पूरा खा डालता है, और यह नहीं सोचता कि वह कल क्या खाएगा। गरीबी और अभाव की कल्पना को मन में कदापि स्थान नहीं देना चाहिए।

गरीबी का सम्बन्ध वस्तुजगत् से इतना नहीं है जितना हमारे मनोजगत् से है। यदि आप इससे पीड़ित हैं तो अपने मानसिक भावों में तुरन्त परिवर्त्तन कर डालें। दुःख, दरिद्रता और लाचारी के भाव मन से निकाल दें। सुख-समृद्धि, स्वाधीनता और ऐश्वर्य के विचारों से अपने मानसिक क्षेत्र को प्रकाशित करें। आप देखेंगे कि समृद्धि आपके पास चारों ओर से खिंची चली आ रही है।

प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर भी इसे समझ सकते हैं। किसी विकासोन्मुखी व्यक्ति के पास जाकर उसकी मनोवस्था का सूक्ष्मता से अध्ययन कीजिए। वह आपको प्रतिक्षण ऐसा अनुभव करते मिलेगा—"मैं बढ़ रहा हूँ। सौभाग्य और समृद्धि मेरी ओर खिंची चली आ रही हैं।" ऐसे व्यक्ति को धन कमाने की अपनी योग्यता पर पूरा विश्वास रहता है। वह अपने व्यवसाय को शंकाशील और सन्देहयुक्त मन से प्रारम्भ नहीं करता। न वह अपना समय गरीबी और दीनता की ऊहापोह में व्यतीत करता है। वह स्वयं को धनवान् और समृद्धि-शाली अनुभव करता है। उसकी प्रत्येक चाल-ढाल समृद्ध होती है। वह गिड़गिड़ाता नहीं, लड़खड़ाता नहीं, चीथड़े नहीं पहनता; वह अपनी शक्ति को निश्चित दिशा की ओर मोड़ता है और विश्वास के साथ निरन्तर बढ़ता चला जाता है।

स्वेट मार्डेन ने लिखा है—"कोई करोड़पति पहले अपनी मानस-सृष्टि में समृद्धिशाली स्थिति को उत्पन्न करता है, जिससे समृद्धि उसकी ओर प्रबल वेग से जाने लगती है। यह देखा गया है कि जितने बड़े-बड़े समृद्धिशाली हैं वे अपने हाथ से बहुत कम काम करते हैं। वे केवल अपने मन में समृद्धि की इमारत खड़ी करते रहते हैं। वे कार्यकर स्वप्नों को देखा करते हैं। वे अपनी मानसिक शक्ति को एक दिशा में केन्द्रीभूत करके अपने को अपार शक्ति का स्वामी बना लेते हैं। समृद्धि के नियमों का यथोचित रीति से पालन करने से जैसा प्रत्यक्ष लाभ होता है वैसा कंजूसी करके एक-एक कौड़ी जोड़ने से नहीं होता। कंजूसी से हमारी आत्मा मलिन, संकीर्ण एवं अनुदार हो जाती है। यदि हम अपने मन को दुःख, दरिद्रता और लाचारी की ओर लगाएँगे तो हम वैसे ही बन जायँगे।"

समृद्धि का अभिप्राय यही है, कि जो वस्तु हमारे लिये उपयोगी और लाभदायक है, वह हमें प्रचुर मात्रा में मिलती रहे। उन वस्तुओं का हमारे पास उचित भाण्डार रहे जो हमारी आत्मा को विकसित करने वाली श्रेष्ठ और उच्चकोटि की हैं, जो हमारे व्यक्तित्व को वैभवशाली बनाती हैं।

व्यवहार-कुशलता

संसार में काम चलाने के लिए जहाँ अन्य अनेक गुण चाहिएँ, वहाँ लोक-व्यवहार का जानना-समझना और उसमें कुशल होना बहुत ही आवश्यक है। जिसे लोक-व्यावहार आता है, या जिसमें व्यावहारिक बुद्धि है, वह अपनी योग्यता का सिक्का दूसरे पर झट जमा लेता है और अपना काम सुन्दरता से निकाल लेता है। प्रतिभा हम में चमत्कार पैदा कर सकती है; शिक्षा हमें योग्य बनाती है, धन हमें विश्वसनीय और निश्चिन्त बनाता है; पर लोक-व्यवहार हमें आदरणीय बनाता है। यह ऐसा ज्ञान है जिसकी शिक्षा पाठशाला, कालिज और पुस्तकों द्वारा नहीं होती, इसके लिए लोक ही पाठशाला है। इसीलिए आचार्यों ने अपनी शिक्षाओं का अन्त करते हुए लिखा है:—

> आचार्यः सर्वचेष्टासु लोक एव हि धीमत ।
> अनुकुर्यात्तमेवातो लौकिकार्थे परीक्षकः ॥

अर्थात् लोक-व्यवहार में लोक ही आचार्य है, अतः लौकिक कार्यों में उसी का अनुकरण करे

दो व्यापारी भाइयों की कहानी है। छोटा भाई दिवालिया होने जा रहा था। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या किया जाय। लेनदार दरवाजा नहीं छोड़ रहे थे। तिजौरी खाली पड़ी थी। घाटे की रक़म चुका देने पर बैंक का हिसाब पूरा हो चुका था। ऐसा लग रहा था कि अब किसी प्रकार कुशल नहीं है। ज़ेल जाना पड़ेगा और सारी प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल जायगी।

बड़े भाई को यह सूचना मिली। उसे लोक-व्यवहार का ज्ञान था

और सामूहिक मनोविज्ञान को वह जानता था। उसने २५-३० मोटी-मोटी बहियाँ लीं। हजार-पाँचसौ के असली और दस-बीस हजार के नक़ली नोट लिए। नोटों की गड्डियाँ इस प्रकार बनवाई गई कि गड्डी में ऊपर असली नोट रहा और नीचे सब नक़ली नोट रहे। बही-खाते उसने छोटे भाई की बैठक में सजा दिए और स्वयं गद्दी पर बैठ गया तथा तिजौरी खोलदी, जिसमें नोटों की गड्डियाँ खचाखच भरी थीं। लेनेवाले भीतर आये। सबकी दृष्टि नोटों की गड्डियों और बही-खातों पर पड़ी। बड़े भाई ने सबको संबोधित करते हुए कहा--"हमारा पावना फँस गया था, इस कारण हम कुछ चिन्तित हो गए थे। उधर हमारे दुश्मनों ने अफवाह उड़ा दी कि हम दिवालिया होने जा रहे हैं। ईश्वर की कृपा से हमारा पावना रुपए में चार आने वसूल हो गया है। फिर भी हमें आशा है कि हम इतने रुपए से अपने उन रोजगारी भाइयों का भुगतान कर देंगे, जो भविष्य में हमसे सम्बन्ध नहीं रखना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि वे अपना-अपना खाता लेकर आएँ और हमारे खाते से मिलान करके देना-पावना चुकता करलें।"

इस धमकी का असर अनुकूल हुआ। लेनदार नोटों की गड्डियाँ देखकर खिसक गए। साख ज्यों की त्यों बनी रही। दिवाला निकलते-निकलते बच गया।

लोक-व्यवहार में ऐसे अवसर प्रायः पड़ते रहते हैं जब प्रत्युत्पन्न-मतित्व की आवश्यकता होती है। सामयिक सूझ-बूझ जिसमें नहीं है, वह कितना ही विद्वान् हो, लोक-व्यवहार में सदा कच्चा रहता है।

ज्योतिष का एक प्रसिद्ध पण्डित एक राजा के दरबार में आजीविका की तलाश में पहुँचा। उसके ज्ञान की परीक्षा के लिए राजा ने अपनी जन्म-पत्री दिखलाई और अपनी भूतकाल की घटनाओं के सम्बन्ध में प्रश्न किये। ज्योतिषी ने सभी प्रश्नों के उत्तर ठीक-ठीक दे दिये। उसके शास्त्र-ज्ञान और विद्वत्ता पर राजा और दरबारियों को पूरा विश्वास हो गया।

अब राजा ने अपने भविष्य के सम्बन्ध में प्रश्न किया। ज्योतिषी ने जन्मपत्र देखा और गणित करके बतलाया—"आज से ठीक छह मास पश्चात् आपका मृत्यु योग है जो अटल है।" राजा ने सुना तो पाँव-तले की जमीन खिसक गई। दरबार में सन्नाटा छा गया। मन्त्रियों के मुँह उतर गए। दैवज्ञ पण्डित अपने ज्ञान के अभिमान में मन ही मन फूल रहा था।

एक वृद्ध मन्त्री बैठा-बैठा यह सब चरित्र देख रहा था। वह ताड़ गया कि ज्योतिषी विद्वान् कितना ही हो; पर लोकव्यवहार में शून्य है। इसकी विद्या बड़ी भयानक और आपत्तिजनक हो सकती है। राजा इसके वचनों पर अन्धविश्वास कर लेगा, तो अवश्य उसके प्राण जायँगे। उसने यह भी सुन रक्खा था कि ज्योतिष भूतकाल के सम्बन्ध में निश्चित उत्तर दे सकता है, पर भविष्य के सम्बन्ध में उसके उत्तर सोलहों आना ठीक नहीं उतरते। मन्त्री आगे बढ़ा और दैवज्ञ को प्रणाम करता हुआ बोला—"महाराज, मेरी जन्म-कुण्डली भी देख दीजिए। मैं अधिक कुछ जानना नहीं चाहता, केवल अपनी मृत्यु की तिथि जानना चाहता हूँ।"

दैवज्ञ ने गणना करके मृत्यु-तिथि बता दी, जो उस समय से पाँच साल बाद पड़ती थी।

तदुपरान्त मन्त्री ने अन्य मन्त्रियों और सभासदों की कुण्डलियाँ भी विचारार्थ प्रस्तुत कीं और सबकी केवल मृत्यु-तिथियाँ जानने का आग्रह किया।

दैवज्ञ ने अभिमान के साथ सबकी मृत्यु-तिथियाँ निकाल कर बता दीं। उस समय ऐसा लग रहा था मानो स्वयं ब्रह्मा उतर आए हैं और अपनी सृष्टि के सम्बन्ध में भविष्यद्वाणी कर रहे हैं।

कुछ देर पश्चात् वृद्ध मन्त्री ने नितान्त भोलेपन से कहा—"महाराज, आपकी जन्मपत्री हम लोग देखना चाहते हैं, उसे दिखा कर हमें कृपया यह समझा दें कि किन विशेष ग्रहों के योग ने आपको ऐसा प्रख्यात और सिद्धहस्त दैवज्ञ बना दिया है।"

दैवज्ञ ने अभिमान के साथ अपनी जन्मकुण्डली निकाली और उसमें पड़े हुए विद्या-योग की व्याख्या करके सब को समझाई।

मन्त्री बड़ी शान्ति से सब सुनता रहा। राजा और दरबारियों का ध्यान भी इस वार्तालाप में उलझा रहा और उन्हें अपनी मृत्यु-तिथि के सम्बन्ध में सोचने का अधिक अवसर न मिला।

मन्त्री ने आगे प्रश्न किया—"महाराज आपकी जन्मपत्री में जो आयु-ग्रह पड़े हैं उनके अनुसार आपकी उम्र कितनी होनी चाहिए।"

"सत्तर वर्ष।"—दैवज्ञ ने प्रसन्नता से उत्तर दिया।"

"उसमें से कितनी व्यतीत हो चुकी है?"

"बत्तीस वर्ष।"

"अर्थात् अभी आपको ३८ वर्ष तक संसार में और जीवित रहना है?"

"निस्सन्देह! ग्रहों का फल कभी असत्य नहीं होता।"

दूसरे ही क्षण मन्त्री की कमर में झूलती हुई तलवार नंगी होकर उसके हाथ में चमकी और दैवज्ञ का सिर फ़र्श पर लुढ़कने लगा।

महाराज को सम्बोधित करते हुए मन्त्री ने कहा—"यह पाप केवल आपका समाधान करने के लिए करना पड़ा। भविष्य क्या है, इसका ठीक-ठीक उत्तर वे ही देते हैं, जो लोक-व्यवहार से शून्य होते हैं। यह दैवज्ञ जो अपने सिर पर लटकती हुई मृत्यु को नहीं जान सका, आपकी, मेरी तथा औरों की मृत्यु-तिथि बताने का साहस कैसे कर सका? ऐसे लोग समाज के लिए बड़े हानिकारक होते हैं; उनका बध जितना शीघ्र किया जाय, उतना ही शुभ है।

कुशलता से कही गई बात सबको प्रसन्न कर देती है। कुशल के हाथ का कार्य सबसे प्रशंसा प्राप्त करता है। बुद्धिमत्ता का योग जब तक कुशलता से न हो, तब तक वह विशेष लाभप्रद नहीं है।

'हितोपदेश' और 'पंच-तंत्र' में चातुर्य की ऐसी अनेक कहानियाँ

संकलित हैं, जिन्हें पढ़ कर हम बहुत कुछ सीख सकते हैं। उस खरगोश की कहानी प्रसिद्ध है, जिसने कुए में प्रतिबिम्ब दिखा कर एक मूर्ख सिंह को डुबा मारा था। उस खरगोश की कहानी भी तुमने प्रारम्भिक कक्षाओं में पढ़ी होगी, जिसने हाथियों के झुण्ड को चन्द्रमा दिखा कर तालाब में जाने से डरा दिया था। अन्त में उस नीतिकार ने यह निष्कर्ष निकाला है, कि संसार में चातुर्य के आगे बुद्धि की एक भी नहीं चलती। निरी बुद्धि पद-पद पर विफल होती और उपहासास्पद बनती है। चतुरता का योग रहने पर एक सामान्य बुद्धि का मनुष्य ऐसा काम कर डालता है, जैसा दस बुद्धिमान् मिल कर भी नहीं कर सकते। एक कहावत है—'बुद्धि दोपहर तक पड़ी सोया करती है। चतुराई छह बजे ही जाग जाती है।'

बुद्धि कुछ है; चतुराई सब कुछ है। संकटापन्न परिस्थिति से छुटकारा पाने के लिए बुद्धि और धन उतने सहायक नहीं होते, जितनी चतुराई होती है। चतुराई न होती तो घड़ियाल की पीठ पर बैठा हुआ बन्दर किस प्रकार लौट कर फिर पेड़ पर पहुँच जाता, और किस प्रकार गंगदत्त नामक मेंढक कुए से परित्राण पाता ?

व्यापार चलाने में कुशलता की आवश्यकता बहुत अधिक है। कुशल व्यापारी वही है, जो बहुत से मनुष्यों के श्रम की ठीक-ठीक व्यवस्था कर सकता है; मनुष्यों की प्रकृति पहचान सकता है; जीवन की व्यावहारिक बातों का जिसे पूरा अनुभव है और जो संकट में घबराता नहीं है।

सर्वोत्तम मानसिक शक्ति और नित्य-प्रति के काम करने की योग्यता ये दोनों बातें एक दूसरे से विरुद्ध नहीं हैं। संसार के अनेक बड़े-बड़े विद्वान् दैनिक कार्यों में भी बड़े कुशल थे। रवीन्द्रनाथ ठाकुर होमियोपैथी का भी ज्ञान रखते थे, और अपनी पत्नी के रसोई-घर में बैठकर विभिन्न प्रकार के व्यंजनों के निर्माण में भी योग देते थे; और उनका स्वाद परिवर्त्तन करने के लिए नए-नए प्रयोग–आविष्कार भी करते थे। पंडित ईश्वरचन्द्र

विद्यासागर प्रेस का भी प्रबन्ध करते थे। पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी न केवल 'सरस्वती' का सम्पादन करने और लेख लिखने में दक्ष थे, गृह-प्रबन्ध में भी उनकी दक्षता अनुकरणीय थी। वे रहते कानपुर में थे, और वहीं से प्रयाग से प्रकाशित होनेवाली 'सरस्वती' का सम्पादन करते थे। उनकी प्रेस-कापी सदैव ठीक समय पर पहुँच जाती थी और वह इतनी शुद्ध होती थी कि कम्पोजीटरों को कहीं सन्देह करने का अवसर न आता था। वे घर-बार और खेत-खलिहान की ठीक-ठीक सूची रखते थे और पूछने पर ठीक-ठीक बतला सकते थे, कि किस खेत में किस फ़सल में अरहर बोया गया, कितना बीज पड़ा, कितनी मज़दूरी दी गई, कितना अरहर मिला, कितनी लकड़ी मिली और कितना भूसा मिला। अन्त में सब मिलकर उस खेती से क्या लाभ या हानि हुई, यह भी ठीक से लिखा रहता था। आम खाने का उन्हें विशेष शौक़ था और उनके किस बाग़ के किस वृक्ष ने उस वर्ष कितने आम दिए, यह भी उन्हें ठीक-ठीक ज्ञात रहता था।

प्रत्येक युवक को स्मरण रखना चाहिए, कि उसके जीवन का सुख दूसरों की सहायता और कृपा पर उतना निर्भर नहीं है, जितना स्वयं उसकी शक्तियों पर। यदि बुद्धिमानी के साथ उद्योग किया जाय तो उसका उचित फल अवश्य मिलेगा। ऐसा उद्योग मनुष्य को उन्नति के मार्ग पर ले जाता है, उसके व्यक्तिगत चरित्र को प्रकट करता है और दूसरों के लिए उदाहरण उपस्थित करता है। सब लोग समान उन्नति नहीं कर सकते, यह सत्य है; पर प्रत्येक अपनी योग्यतानुसार उन्नति अवश्य कर सकता है।

जिन मनुष्यों को जीवन में असफलता पर असफलता और पराजय पर पराजय का सामना करना पड़ता है, उनकी मनोवृत्ति विशेष प्रकार की हो जाती है। उन्हें ऐसा लगता है कि अपने सिवा संसार का प्रत्येक मनुष्य उनका अहितचिन्तक ही है। वे अपनी विपत्ति का कारण अन्यों पर डाला करते हैं। अपनी कमियों और अपूर्णताओं की ओर ध्यान नहीं देते। हम

स्वयं ही अपने मित्र हैं, स्वयं ही अपने शत्रु', शास्त्रकार का यह वचन अक्षरशः सत्य है।

संसार में ऐसे मनुष्यों की संख्या कम नहीं है, जो व्यावहारिक ज्ञान में नितान्त कोरे रहते हैं। कालिजों और विश्व-विद्यालयों में व्यावहारिक अर्थशास्त्र पर वे व्याख्यान देते हैं, मोटी-मोटी पुस्तकें लिखते हैं, पर बाज़ार से कोई वस्तु मोल लेते समय वे मुसीबत में पड़ जाते हैं। ऐसा लगता है मानो उन्होंने अपनी एक योग्यता का विकास करने के लिए अन्य योग्यताओं का विनाश कर डाला है, इसीलिए वे जग-जीवन के सर्वथा अयोग्य बन गए हैं उच्चकोटि के दार्शनिकों, वैज्ञानिकों, साहित्यिकों और महात्माओं के सम्बन्ध में ऐसी बातें प्रायः सुनने में आती हैं जो सिद्ध करती हैं कि लोक-जीवन की साधारण से साधारण बात से भी वे कितने अनभिज्ञ हैं। थोड़ी देर के लिए मान लीजिए कि आप एक बहुत बड़े वैज्ञानिक हैं और आपने अपनी प्रणाली में कोई विशेष आविष्कार किया है। पर यदि आप गाय और बैल का भेद नहीं जानते तो साधारण लोग अवश्य आप पर हँसेंगे।

न्यूटन के विषय में एक कहानी प्रसिद्ध है। उसने दो बिल्लियाँ पाल रक्खी थीं। एक बड़ी थी और दूसरी छोटी। शाम को दोनों बिल्लियाँ बाहर घूमने निकल जातीं और न्यूटन महाशय अपने आविष्कारों में लीन हो जाते। बहुत रात गये जब वे प्रयोगशाला से निकलते और सोने को जाते, तब प्रायः देखते कि बिल्लियाँ बाहर ही हैं। बिल्लियों की प्रतीक्षा में उन्हें प्रतिरात्रि किवाड़ खुले रखने पड़ते, क्योंकि यदि किवाड़ बन्द कर दिए जाते तो बिल्लियाँ बाहर ही रह जातीं और ठंड से सिकुड़ कर मर जातीं। इधर किवाड़ खुले रहने से न्यूटन को रात भर सर्दी खानी पड़ती थी।

एक दिन उन्होंने अपने बढ़ई को बुलाकर कहा—"मेरे दरवाजे के दोनों किवाड़ों में दो छेद कर दो, एक बड़ा, बड़ी बिल्ली के लिए और

दूसरा छोटा, छोटी बिल्ली के लिए। उनका मन्तव्य समझकर बढ़ई ने कहा—"दो छिद्रों का क्या होगा? केवल एक बड़ा छेद कर देना ठीक होगा। उसी में से होकर दोनों बिल्लियाँ आ जायँगी।" पर उसकी बात न्यूटन की समझ में नहीं आई। वे केवल प्रयोग के तौर पर एक छिद्र बनवाने के लिए राज़ी हो सके।

बढ़ई ने छेद बना दिया। न्यूटन ने देखा कि एक ही छिद्र से पहले एक बिल्ली भीतर आगई और फिर दूसरी भी। इसी प्रकार क्रमशः वे प्रातः बाहर निकल भी गईं। यह देखकर उन्होंने मान लिया कि व्यावहारिक बुद्धि कुछ और ही वस्तु है और वह उस बढ़ई में न्यूटन की अपेक्षा अधिक थी।

व्यावहारिक बुद्धि की कमी हम में से अधिकांश में पाई जाती है, इसी-लिए हम अपने कार्यों में कभी सफल नहीं हो पाते। एग्रीकल्चर की ऊँची से ऊँची डिग्री प्राप्त करली है। खेती की समस्याओं पर अत्यधिक महत्त्व के लेख लिख लेते हैं, पर सरसों और राई में, कार्तिकी और वैशाखी अरहर में देख कर भेद नहीं बता सकते। यदि किसान अपने इन मार्ग-प्रदर्शकों का अनुकरण न करें और इनके ज्ञान की हँसी उड़ाएँ तो आश्चर्य की क्या बात है।

हम में से अनेक हाईकोर्ट के जज हैं, पर वे अपने मुहल्ले वालों के तो दूर, परिवार वालों और घरवालों के झगड़े नहीं निबटा पाते। पुलिस के अधिकारी अपने बच्चों को दुराचार के मार्ग में जाने से नहीं रोक पाते। विद्वान् प्रोफ़ेसर अपने बच्चों को शिक्षा नहीं दिला पाते। यह सब कुछ क्या सूचित करता है? यही न कि, अपने मस्तिष्क की शक्तियों का एकांगी विकास कर लेने वाले इन महाशयों में व्यावहारिक ज्ञान की कमी है।

व्यावहारिक ज्ञान से शून्य अनेक महापुरुषों की कहानियाँ अब तक जनता का मनोरंजन करती आरही हैं। बेटोवेन अपनी संगीत-कला के लिए विश्व-प्रख्यात हो गया था। पर छह कमीज़ों और छह रूमालों के लिए उसने अपने दर्ज़ी को ३००) दे दिये। यही नहीं, आगे के लिए भी उसका

एक बड़ी रकम पेशगी दे दी। 'सरस्वती' के भूतपूर्व सम्पादक श्रीयुत पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी, बी० ए०, अपनी सम्पादन-योग्यता और समालोचनाओं के लिये हिन्दी-जगत् में काफ़ी प्रख्यात हैं। पर उनके सम्बन्ध में भी कुछ ऐसी जनश्रुतियाँ प्रसिद्ध हैं जो विदित करती हैं कि बख़्शीजी लोक-व्यवहार में साधारण मनुष्य के बराबर भी पटु नहीं हैं। उनके सहकारी कहते हैं कि वे बहादुरगंज से 'इण्डियन प्रेस' आते समय प्रायः मार्ग भूल जाया करते थे—और 'इण्डियन प्रेस' के सामने से होकर कर्नलगंज होते हुए आगे बढ़ जाया करते थे। यूनीवर्सिटी के सामने पहुँच जाने पर उन्हें अपनी भूल ज्ञात होती थी और तब वे पीछे मुड़ते थे।

यह व्यावहारिक बुद्धि की कमी का परिणाम है कि हमारे हिन्दी-लेखक, जो ज़मीन आसमान के कुलाबे मिला सकते हैं, जिनकी रचनाएँ अमरता प्राप्त कर चुकी हैं और जो साहित्य में सदैव के लिए अपना स्थान प्रतिष्ठित कर चुके हैं, आज पैसे-पैसे को मुहताज हैं। उनमें से कुछ सिनेमा की शरण में चले गये हैं, कुछ हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं और या तो दूसरे की उदारता पर निर्वाह कर रहे हैं या भूखों मर रहे हैं।

वकील डेनियल के विषय में भी एक जनश्रुति प्रसिद्ध है। उनके किसी मुवक्किल ने उन्हें एक हज़ार डालर के नोट दिये। डेनियल उस समय पुस्तक पढ़ रहे थे। दूसरे दिन उन्हें कुछ रुपयों की आवश्यकता हुई और उन्होंने ढूँढा तो वे नोट न मिले। कुछ दिनों बाद वही पुस्तक जब उन्होंने फिर पढ़ने को निकाली तब उसके पन्नों में रक्खा हुआ एक नोट उन्हें मिला। कुछ पन्ने और उलटे तो दूसरा नोट मिला। इस तरह वे सारे नोट मिल गए। बात यह हुई थी कि वे उस समय पढ़ने की धुन में थे, इसलिए निशान लगाने के अभिप्राय से रद्दी कागज़ के टुकड़ों के स्थान पर नोटों का प्रयोग कर बैठे।

जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के अनेक उदाहरण आप पिछले पाठों में पढ़

जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के अनेक उदाहरण आप पिछले पाठों में पढ़ चुके हैं। वे दिखाने के लिए पर्याप्त हैं कि जीवन-व्यापार को सफलतापूर्वक चलाने के लिए सजगता की बहुत आवश्यकता है। वह सजगता तभी प्राप्त होती है जब हम अपने कार्य और स्वार्थों से सम्बन्ध रखनेवाली छोटी-से-छोटी वस्तुओं पर भी उचित ध्यान दें और उनकी उपेक्षा न करें। एकाग्र-चित्त होकर छोटी-से-छोटी वस्तुओं का अध्ययन मनुष्य को सफलता के उच्च शिखर पर पहुँचा देता है। जिसकी निरीक्षण बुद्धि जाग्रत है वह अपना प्रत्येक कार्य सावधानी से करेगा और किसी काम को अधूरा नहीं छोड़ेगा। ऐसे गुण जिस मनुष्य में प्राप्त हों, समझ लो कि उसने स्वयं को अच्छी प्रकार से शिक्षित किया है। एक छोटे काम को भी पूरा कर डालना दस बड़े कामों को आरम्भ करके अधूरा छोड़ देने से कहीं अच्छा है।

मनुष्य-समाज का जीव है। समाज में ऐसे अवसर प्रायः उपस्थित होते रहते हैं जब हमें दूसरों को अपने पक्ष में लाने की आवश्यकता पड़ती है। सभा सोसाइटियाँ और पञ्चायतें हमारे देश की प्राचीन संस्थायें थीं, जिनके द्वारा हम अपने विचार दूसरों पर व्यक्त करके उन्हें प्रभावित करते थे और अपने पक्ष में लाने का प्रयत्न करते थे। प्रजातन्त्रवाद के प्रसार ने इस आवश्यकता को कहीं अधिक बढ़ा दिया है। अब प्रतिदिन देखा जाता है कि जो मनुष्य अधिक व्यवहार-कुशल और लोक-प्रिय होता है, चुनाव की दौड़ में वही बाजी ले जाता है। म्युनिसिपल बोर्ड, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, धारा और व्यस्थापिका सभाओं के चुनाव हमारे व्यावहारिक ज्ञान की परीक्षाएँ हैं।

किसी मनुष्य का चरित्र कितना ही आदर्श हो, यदि वह अपना काम सावधानी से नहीं करता तो उसका विश्वास कोई नहीं करता। लाहरवाही और ढिलाई अच्छे-से-अच्छे व्यापार को चौपट कर डालती है।

नियमपूर्वक काम करने की आदत रहे तो काम भी अधिक हो जाता है और सुन्दर भी होता है। सिसिल ने लिखा है—"काम करने की विधि

सन्दूक में वस्तुएँ रखने के समान है। कुशल रखनेवाला अकुशल की अपेक्षा अधिक वस्तुएँ रख देगा और वे देखने में भी सुन्दर लगेंगी।"

एक वार में एक काम ही ठीक से होता है। जो काम हाथ में है उसे समाप्त करलो तब दूसरा प्रारम्भ करो। अधिक कार्य एक साथ करने लगोगे तो एक भी पूरा न होगा। शक्ति बँट जाने पर सफलता सन्दिग्ध हो जाती है। आज का काम कल पर छोड़ देना बुरा है, कल न आए और वह काम अधूरा ही पड़ा रहे। इसलिए कुशल व्यक्ति अपना दैनिक कार्य समाप्त करके ही उठते हैं, चाहे भोजन और विश्राम में इससे कितनी ही देर क्यों न हो जाय। अँग्रेजी में एक कहावत है कि "यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारा काम हो जाय तो उसे स्वयं जाकर करो; और यदि तुम चाहते हो कि वह काम न हो तो किसी दूसरे को भेज दो।"

एक जमीदार की कहानी है। उसके पास दस हजार रुपया की निकासी की जमीन थी। ऋण-ग्रस्त हो जाने पर उसने अपनी आधी जमीन तो बेच दी और शेष आधी एक किसान को बीस वर्ष के लिए लगान पर दे दी। बीस वर्ष पश्चात् किसान जब अन्तिम लगान चुकाने आया तब उसने पूछा कि "क्या आप इस ज़मीन को बेचेंगे ?" ज़मीदार ने पूछा—"क्या तुम लेना चाहते हो ?"

"हाँ, यदि दाम पट गया तो ले लूँगा।" किसान ने कहा।

"मैं इसका कारण जानना चाहता हूँ। मेरे पास पूरी ज़मीन थी और मैं फिर भी कर्ज़दार हो गया। तुम्हारे पास केवल आधी ज़मीन थी, तुम तीन हज़ार रुपये प्रतिवर्ष लगान भी देते रहे और फिर भी इतना धन जमा कर सके कि इस ज़मीन को खरीदने का साहस कर रहे हो ?"—ज़मीदार ने पूछा। "कारण स्पष्ट है," किसान ने उत्तर दिया "आप कुछ करते नहीं थे और मैं परिश्रम करता था। मैं भूमि से पैदा कर लेता था।

कार्य और तत्परता के सम्बन्ध में हमें उन वीर सेनानियों से शिक्षा

लेनी चाहिए जो अपनी अतिरिक्त सतर्कता और सावधानी से हारी हुई बाजी को पलट देते हैं। यह गुण नेपोलियन में बहुत बड़ी मात्रा में था।

वह कोर्सिका टापू का रहने वाला एक साधारण सैनिक था। अपनी योग्यता से वह फ्राँस देश का प्रधान सेनापति हो गया और अन्त में उसी देश का राजा हो गया। यद्यपि वह छोटी-छोटी बातों से भी बड़ा प्रेम रखता था, परन्तु उसकी विचार करने की शक्ति बड़ी विलक्षण थी। इसी शक्ति के कारण वह दूर की बात भाँप लेता था और बहुत से आदमियों के लिए छोटी-छोटी बातों का भी प्रबन्ध झट-पट कर डालता था। वह मनुष्य के चरित्र को कुछ ऐसा पहचानता था कि अपने काम के लिए सबसे बढ़िया आदमी चुन लेता था और चुनाव में कभी धोखा न खाता था। जरूरी बातों में जहाँ तक हो सकता था वह अपने गुमाश्तों पर बहुत कम विश्वास करता था। इस बात का समर्थन सन् १८०७ की एक घटना से अच्छी तरह होता है।

उस समय नेपोलियन की सेना नदी के किनारे पड़ाव डाले पड़ी थी। उसके सामने रूसी थे, दायें तरफ़ आस्ट्रिया वाले थे और पीछे की तरफ़ जर्मन थे। ऐसी हालत में नेपोलियन के लिए फ्रांस से सम्बन्ध रखना बड़ा कठिन था; परन्तु उसने यह काम ऐसी योग्यता से किया कि वह कभी परास्त न हुआ। फ़ौजों का आना-जाना, फ्रांस, स्पेन, इटली और जर्मनी से नई फ़ौजों का लाना, नहरें खुदवाना और पोलेण्ड और प्रसिया की पैदावार को अपने पड़ाव की जगह तक शीघ्रता से लाने के लिए सड़कें बनवाना, इत्यादि अनेक बातों की वह पूरी-पूरी देख-रेख रखता था। वह घोड़े मँगवाता था। जीन मँगाने का इन्तजाम करता था और सैनिक के लिए कपड़े, जूते और भोजन मँगाने और रखने का प्रबन्ध करता था। इन कामों के साथ ही साथ फ्रेंच कालिज के नए प्रबन्ध के सम्बन्ध में आज्ञा देता था, अपने देशवासियों की शिक्षा की व्यवस्था सोचता था, समाचार-

पत्रों के लिए लेख लिखता था, हिसाबों की जाँच करता था, शिल्पकारों को गिरजा बनाने के विषय में परामर्श देता था, पेरिस के सामाजिक-पत्रों पर ताने कसता था, थिएटरों के झगड़ों को शान्त करता था और विदेशी राजाओं से पत्र-व्यवहार करता था। उसका शरीर तो एक स्थान पर रहता था परन्तु मन सारे संसार में फिरता था।

एक समय में वह अनेक कार्य करता था। एक पत्र में उसने अपने एक सेनापति से पूछा कि "तुमको मेरी भेजी हुई बन्दूकें ठीक-ठीक मिल गईं या नहीं?" दूसरे पत्र में उसने अपने एक दूसरे आदमी को बूर्टमबर्ग की फ़ौजों को कपड़े, जूते इत्यादि बाँटने के लिए लिखा; तीसरे में एक आदमी को उसने फ़ौज के लिए दूना नाज भेजने के लिए मजबूर किया; चौथे आदमी को उसने लिख भेजा कि "फ़ौज को कमीज़ों की जरूरत है और वे अभी तक नहीं मिलीं।" पाँचवें आदमी से पूछा कि "मुझे बतलाओ कि तुमने बिस्कुट और रोटी का इन्तजाम कर लिया कि नहीं।" छठे आदमी को लिखा कि "सैनिक शिकायत करते हैं कि हमको अभी तलवारें नहीं मिलीं। किसी अफ़सर को तलवारें लाने के लिए पोसन भेज दो। उनको टोपियों की भी जरूरत है। उन्हें एवलिंग नगर से बनवाकर मँगा लो।" "याद रक्खो कि सोने से काम नहीं चलेगा।" इसी तरह नेपोलियन किसी छोटी बात को भी नहीं छोड़ता था और सब आदमियों को काम में लगाये रहता था। जब कभी काम की अधिकता हो जाती थी तब वह रात के समय बहुत देर तक काम करता था।

जिस तरह और बातों में ईमानदारी से सफलता मिलती है, उसी तरह व्यापार में भी मिलती है। व्यापार में ईमानदारी का ख़याल सबसे पहले होना चाहिये। जिस तरह सैनिक को गौरव का और धर्मात्मा मनुष्य को दया का ख़याल रहता है, उसी तरह व्यापारी, सौदागर और कारीगरों को ईमानदारी का ख़याल होना चाहिए। छोटे-छोटे पेशे में भी ईमानदारी

बरती जा सकती है। राज-मजदूर भी अपना काम अच्छी तरह करके ईमानदार बन सकते हैं। कारीगरों को यश और ख्याति ही नहीं किन्तु बहुत कुछ सफलता भी इस बात से प्राप्त होती है कि वे जिस चीज को जैसा कह कर बेचें वह असल में वैसी ही हो। धोखेबाजी और धींगा-धाँगी से चाहें हम कुछ समय के लिए सफलता प्राप्त कर लें, परन्तु स्थायी सफलता ईमानदारी से मिलती है। कहावत मशहूर है कि "काठ की हाँड़ी दूसरी बार नहीं चढ़ती।" जब कलई खुल जाती है तब सारी शेखी किरकिरी हो जाती है। किसी देश की नामवरी और वहाँ की पैदावार अथवा बनी हुई चीजों की उत्तमता, वहाँ के सौदागरों के साहस, प्रतिभा और उद्योग पर ही निर्भर नहीं है किन्तु उनकी अक्लमन्दी, किफ़ायतशारी और इन बातों से बढ़कर ईमानदारी पर कहीं अधिक निर्भर है। यदि इङ्गलैण्ड इत्यादि किसी देश के व्यापारी इन गुणों को तिलांजलि दे दें, तो उनके तिजारती जहाज दुनिया के सब देशों से निकाल दिए जायँ।

और कामों की अपेक्षा व्यापार में चरित्र की अधिक कठिन परीक्षा होती है। व्यापार में ईमानदारी, स्वार्थत्याग, न्यायपरायणता और सच्चाई की सबसे कड़ी परीक्षा होती है और वे व्यापारी, जो उन परीक्षाओं में सच्चे उतरे हैं, उतने ही आदर के पात्र हैं, जितने वे सैनिक जो तोपों के सामने, भयानक धुँआँधार युद्धों में अपनी वीरता का परिचय देते हैं। हम यह मानते हैं कि अनेक व्यापारों में जो करोड़ों आदमी लगे हुए हैं वे प्रायः इस परीक्षा में सच्चे उतरे हैं; और यह बात उनके लिए बड़े गौरव की है। यदि हम थोड़ी देर के लिए सोचें कि हर रोज मामूली नौकरों को, जो स्वयं बहुत थोड़ा वेतन पाते हैं, कितनी बड़ी-बड़ी रक़में सौंप दी जाती हैं—दूकानदारों, मुनीमों, दलालों और बैंकों के मुहर्रिरों के हाथों में होकर हर रोज कितना रुपया आता-जाता रहता—और इन प्रलोभनों के बीच में भी विश्वासघात के काम कितने कम होते हैं, तो यह मानना पड़ेगा कि यह प्रतिदिन

की ईमानदारी मनुष्य के चरित्र के लिए बड़े गौरव की बात है। व्यापारियों को एक-दूसरे का भी बड़ा विश्वास रहता है, क्योंकि वे आपस में माल उधार देते रहते हैं। व्यापार के लेन-देन में यह बात कुछ ऐसी साधारण हो गई है कि हमको बिलकुल आश्चर्य नहीं मालूम देता। एक विद्वान् ने कहा है कि "मनुष्य एक-दूसरे के साथ भक्ति रखते हैं, इसका यह सर्वोत्तम उदाहरण है कि सौदागर अपने दूर-दूर के मुनीमों पर, जो शायद उनसे आधी दुनिया की दूरी पर हैं, पक्का विश्वास रखते हैं और बहुधा उन लोगों को, जिनको उन्होंने शायद कभी नहीं देखा, उनकी ईमानदारी के भरोसे पर ही प्रचुर धन भेज देते हैं।

यद्यपि साधारणतया व्यापार में ईमानदारी का बर्ताव होता है, तो भी बेईमानी और धोखेबाजी के सैकड़ों काम देखने में आते हैं। बहुत से व्यापारी अच्छी चीजों में निकम्मी चीजों की मिलावट कर देते हैं, जैसे घी में चर्बी या वनस्पती घी की, अथवा दूध में पानी की। ठेकेदार बेगार टाल देते हैं। जुलाहे शुद्ध ऊन की जगह ऊनी-सूती कपड़े भेज देते हैं। कारीगर फ़ौलाद की जगह ढले हुए लोहे के औज़ार, बिना छिद्र की सुइयाँ और उस्तरे जो देखने ही के होते हैं, इत्यादि अनेक निकम्मी चीजें दे देते हैं। परन्तु ऐसी बातों को साधारण समझना चाहिए, क्योंकि ऐसा वे लोग करते हैं जिनके विचार नीच हैं। ऐसे मनुष्य धनी हो सकते हैं, परन्तु सदाचारी नहीं हो सकते और न उनके चित्त को शान्ति ही मिल सकती है, जिसके बिना सारी दौलत दो कौड़ी की है। बिशप लेटिमर से दूकानदार ने एक चाकू के दो आने ले लिए, जो असल में एक आने का भी न था। इस विषय में उसने अपने एक मित्र से कहा कि—"उस धूर्त ने मुझको नहीं किन्तु अपने अन्तःकरण को धोखा दिया।"

सम्भव है कि जो आदमी पक्का ईमानदार है वह उतना शीघ्र धनाढ्य न हो जितना शीघ्र बेईमान आदमी; परन्तु जो सफलता धोखे या बेईमानी

के बिना प्राप्त होती है वही सच्ची सफलता है। चाहे मनुष्य कुछ समय तक असफल ही रहे, परन्तु उसको ईमानदार रहना चाहिए। चाहे सर्वस्व जाता रहे परन्तु चरित्र की रक्षा करनी चाहिए; क्योंकि चरित्र स्वयं धन है। यदि अच्छे उद्देश्य वाला मनुष्य दृढ़ बना रहे, तो उसको सफलता भी अवश्य प्राप्त होगी और उसका सर्वोत्तम फल मिले बिना नहीं रहेगा।

संक्षेप में

"सफलता न तो भगवान् की कृपा से प्राप्त होती है और न किसी मनुष्य की सहायता से। वह किसी को दी जाने वाली वस्तु नहीं है और न किसी से पाई जाने वाली। जिस प्रकार योग की सिद्धियाँ अभ्यास का फल हैं, जिस प्रकार विद्या अभ्यास से प्राप्त होती है, उसी प्रकार सफलता स्वयं प्राप्त की जाती है, वह चाहे धन सम्बन्धी हो, मान-सम्बन्धी हो या यश-सम्बन्धी हो।"

—महाकवि भास

"महानुभावों को सफलता के मार्ग में अग्रसर होते हुए भगवान् से प्रार्थना करते देखा जाता है। रघुवंश महाकाव्य के प्रारम्भ में महाकवि कालिदास तक ने 'जगतः पितरौ पार्वती परमेश्वरौ' से 'वागर्थप्रतिपत्ति' के लिये सहायता माँगी है। इसी प्रकार महाकवि तुलसीदासजी ने रामचरित-मानस के प्रारम्भ में अपने महत्प्रयास की सफलता के लिए नर-किन्नर-देव-दनुज, यहाँ तक कि समस्त जड़-चेतन से प्रार्थना की है। सफलता के लिए इस प्रकार की प्रार्थनाओं का अभिप्राय आत्मबल प्राप्त करना है। कार्यकर्त्ता को यह अनुभव होता रहता है कि भगवान् की सहायता उसके साथ है, अतः वह साहस के साथ अपने कार्य में जुटा रहता है।

"इसी प्रकार सफलता प्राप्त कर लेने के पश्चात् अपने सहायकों और साथियों को तथा भगवान् को धन्यवाद दिया जाता है। उसका अभिप्राय अभिमान का परिहार मात्र है। अभिप्राय यह है कि कहीं सफलता पाने वाले को अहंकार अथवा अभिमान न हो जाय जो पतन का मूल कारण है।

"इतना सब लिखने का प्रयोजन यही है कि बड़े-बड़े विद्वानों व कृतियों को अपनी सफलता के लिए भगवान् को या किसी अन्य को धन्यवाद

देते देखकर कहीं आप यह न समझ लें कि उसे भगवान् की या किसी अन्य की सहायता से सफलता मिली है तो मुझे भी क्यों नहीं मिल सकती। और ऐसा सोचकर उद्योग करना छोड़ बैठें और रात-दिन आलसियों की भाँति रामनाम का जप या अखंड पाठ किया करें। उन कृतियों के महत्कार्यों को ध्यान से देखिए तो ज्ञात होगा कि उन कार्यों के प्रत्येक अंश में कर्त्ता का अपार परिश्रम समाया हुआ है।" —लेखक

"सबसे बढ़कर यह बात है—जिस तरह दिन के बाद रात अवश्य आती है उसी तरह जो मनुष्य अपने अन्तःकरण के साथ सच्चाई का बर्त्ताव करता है वह दूसरों के साथ कभी खोटा बर्त्ताव नहीं कर सकता।"

—शेक्सपियर

"यदि मुझे किसी नवयुवक को उपदेश देना हो तो मैं यह कहूँगा—

अपने से अच्छे मनुष्यों की संगति करो। अच्छी पुस्तकों को पढ़ो। अच्छाई की क़द्र करना सीखो। जीवन का सारा सुख इसी बात पर निर्भर है। यह देखो कि महात्माओं ने किन बातों की क़द्र की थी। उन्होंने महत्त्व-पूर्ण बातों की क़द्र की थी। जो मनुष्य संकीर्ण विचारों के होते हैं वे नीच बातों की प्रशंसा और भक्ति करते हैं।"

—थैकरे

"किसी देश की तुलना अन्त में उसके व्यक्तियों की योग्यता से होती है।"

—जे० एस० मिल

"हम व्यवस्थाओं से—क़ायदे-क़ानूनों से—बहुत कुछ लाभ की आशा करते हैं; परन्तु मनुष्य से बहुत कम।" —बी० डिजरेली

"निम्न श्रेणी के मनुष्यों ने इङ्गलैण्ड के लिए आविष्कार सम्बन्धी जितने कार्य किए हैं उनको निकाल दो और फिर देखो कि केवल उन्हीं के अभाव से इङ्गलैण्ड की स्थिति कैसी हो जाती है।" —आर्थर हैल्प्स

"अब संसार का स्वामित्व उद्योग और विज्ञानशास्त्र के हाथ में

रहेगा। विज्ञान के परिडत और उद्योगी पुरुष अपनी शक्ति से सारी दुनिया को वशीभूत कर लेंगे।" —उसाल्वान्दी

"धैर्य वीरता का अत्युत्तम, मूल्यवान् और दुष्प्राप्य अंग है। धैर्य सब आनन्दों और शक्तियों का मूल है। आशा से भी, यदि उसके साथ अधीरता हो, कदाचित सुख नहीं मिलता।" —जान रस्किन

"धनवान् उसे ही कहना चाहिये जो उद्योगी हो। उद्योगी मनुष्य प्रत्येक पल को अपना समझता है। समय प्रकृति का ख़जाना है। इस ख़जाने को ऐसे मनुष्य अपने ही अधिकार में रखते हैं। काल के हाथ में काँच की एक शीशी है जिसमें रेत भरी हुई है। उद्योगी वीर उसमें के-एक-एक कण को अमूल्य हीरा समझ कर संग्रह करते रहते हैं।"—डावनांट

"कोई आदमी जब तक किसी चीज़ के लिए मेहनत नहीं करेगा तब तक वह उसे मिल नहीं सकती।" —गारफ़ील्ड

"सतर्कता से अवसर की ताक में रहना, कौशल और साहस से अवसर को प्राप्त करना, शक्ति और दृढ़ता के द्वारा अवसरों को सर्वोत्तम सफलता पर पहुँचाना—निश्चय ही सफलता देने वाले प्रधान सद् गुण हैं।"

—आस्टिन फेल्पस

"क्या तुम सच्चे हृदय से उद्योगी हो ? तो इस मिनट को व्यर्थ मत जाने दो। जिस बात को तुम कर सकते हो अथवा जिस बात का तुम स्वप्न देख सकते हो उसे शुरू कर दो।" —वरले

"मैं रास्ता ढूँढ़ लूँगा या अपना रास्ता ख़ुद बना लूँगा।" —वरले

"इस परिवर्त्तनशील संसार में सब पैदा होते और मर जाते हैं, पर जन्म लेना उसी का सार्थक है जिससे जाति की उन्नति हो।" —भर्तृहरि

"हमें इससे कोई मतलब नहीं कि हम जो कुछ हाथ में लेते हैं, कर गुजरते हैं। हमें तो केवल इतना ही देखना है कि सच्चे वीर की भाँति हम उस पर अड़े रहते हैं या नहीं। बस, इससे अधिक हमें प्रयोजन नहीं।

यदि हम घबराकर या किसी अन्य कारण से उस काम से हाथ खींच लेते हैं तो यह हमारी कायरता है।"　　　　—अब्राहीम लिंकन

"नीचे को देखने से सब अपने को बड़ा अनुभव करते हैं। पर ऊपर को देखने पर सब अपने को दरिद्र अनुभव करते हैं।"

—नीतिकार

"जहाँ प्रारम्भ के लिए उत्साह है, जहाँ आलस्य का अभाव है, जहाँ नम्रता और उद्यम का संयोग है, वहाँ लक्ष्मी अचल रूप से निवास करती है।"

—नीतिकार

"तुम्हीं बतलाओ कि यह काली मिट्टी क्या है? क्या यह उसी खान से नहीं निकलती जिसमें से हीरा निकलता है? क्या दोनों एक ही जाति के नहीं हैं? क्या इस गर्द का भी जवाहिरों के साथ उसी तरह का सम्बन्ध नहीं है? इसलिए मैं कहता हूँ कि इस संसार में गन्दी या नाचीज कहलाने लायक कोई वस्तु नहीं है। जिसे हम लोग नाचीज समझते हैं, वह बहुधा सबसे बढ़ कर उपयोगी निकल आती है, केवल उसे अपनाने और उसे लेकर आगे बढ़ने का हौसला चाहिए।"　　　　—रस्किन

"खाली हाथ अथवा कोरी बुद्धि से कोई महत्त्व का कार्य नहीं हो सकता। काम यन्त्रों और साधनों से होते हैं। बुद्धि और हाथ (मानसिक और शारीरिक शक्ति) दोनों के लिए ये साधन समान रूप से उपयोगी हैं।"

—बेकन

"सुयोग के सिर में केवल आगे की ओर बाल होते हैं। पीछे की ओर वह गंजा रहता है। यदि तुम उसके आगे के बालों को पकड़ लो तो वह तुम्हारे हाथ आ जायगा। परन्तु यदि तुम उसे आगे से निकल जाने दोगे तो फिर संसार में ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो उसे पकड़ सके।"

—लैटिन से

"प्रत्येक आपत्ति शाप के समान नहीं होती। जीवन की प्रारम्भिक

आपत्तियाँ बहुधा आशीर्वाद होती हैं। जीती हुई कठिनाइयाँ केवल हमें शिक्षा ही नहीं देतीं, बल्कि वे भविष्य के प्रयत्नों में हमें साहसी भी बनाती हैं।"
—शर्प

"इसमें सन्देह नहीं कि बड़े-बड़े कारखानों के मालिकों ने अपना जीवन 'गरीब बचपन' से शुरू किया था।"
—सेथलो

"ऐसा पेशा ग्रहण करो जिसका उद्देश्य अच्छा हो, जो उच्चाकांक्षाओं की पूर्ति कर सके। इस पेशे का तुम्हारी मानसिक और शारीरिक उन्नति पर क्या प्रभाव पड़ेगा, इसका ध्यान रक्खो। जो लोग उस पेशे को कर रहे हैं, उन्हें ध्यान से देखो, और उनके उदाहरण से शिक्षा लो।"
—रेमनेट

"एक-एक बूँद के गिरने से घड़ा भर जाता है। विद्या, धन और धर्म का भी यही क्रम है।"
—चाणक्य

"जो उद्योग को छोड़कर दैव के भरोसे बैठे रहते हैं वे धर्म, अर्थ और काम का अवश्य नाश करते हैं।"
—नीतिकार

"शिक्षा का उद्देश्य यह होना चाहिए कि आत्मशक्ति का पूरी तरह से उद्‌बोधन और विकास हो। छात्रों को अवसर देना चाहिए कि वे अपनी बुद्धि से काम लेकर खोज करें और उससे परिणाम निकालें। जहाँ तक हो नई बातें उन्हें कम बतलाई जायँ, उन्हें प्रेरित किया जाय कि वे स्वयं खोज करें और नई बातों को निकालें। मानवसमाज का उत्थान इसी प्रकार हुआ है और संसार के विकास का इतिहास भी इसी बात का साक्षी है।"
—हर्बर्ट स्पेन्सर

"नवयुवको, क्या तुमको आपत्तियों को देखकर डर लगता है? क्या तुम्हारी गरीबी तुम्हारे रास्ते में बाधक बन रही है? एक बार सोचो, तुम आज उसी जगह खड़े हो जिस पर अन्त में सफलता पाने वाले भी खड़े हैं। मेरे शब्दों को ध्यान से सुनो और तीस बरस बाद इन पर विचार करना। तुम्हें पता लगेगा कि उस समय जो लोग देश के लखपती धनवान,

प्रभावशाली वक्ता, प्रतिभावान् कवि, ऐश्वर्यशाली सौदागर, मानव जाति के बड़े-बड़े प्रेमी, राष्ट्र और धर्म के उद्धारक होंगे, वे सब इस समय तुम्हारी ही बराबर खड़े हैं। एक इंच ऊँचाई पर भी कोई नहीं है। वे भी बड़ी ही कठिन परिस्थितियों में फँसे रहते हैं।

यदि पास में कुछ नहीं है, कोई सम्पत्ति नहीं है तो ओ नवयुवको, किसी पुस्तकालय में जाओ, कुछ पुस्तकें निकालो और उस परमेश्वर के बनाए इस आश्चर्यजनक यन्त्र—अपने शरीर के, हाथ-पैर, आँखों और कानों के बारे में पढ़ो; फिर किसी डाक्टर के साथ अस्पताल में जाकर शरीर के भीतरी भागों को देखो और कभी भूलकर अपने मुँह से यह मत निकालो कि हमारे पास जीवन-यात्रा शुरू करने के लिए पूँजी नहीं है। देखो, हरेक ग़रीब-से-ग़रीब नवयुवक को स्वयं ईश्वर ने अच्छी तरह से सुसज्जित कर दुनिया में भेजा है। मेहनत करो और दुनिया में अपनी ज्योति फैलाओ ?

—टालपेज

"जीवन का सबसे बड़ा पुरस्कार, जीवन की सबसे बड़ी दौलत है—किसी खास बात की ओर प्रवृत्ति लेकर जन्म लेना। उसी की पूर्ति करने में मनुष्यों को सुख मिलता है।"

—इमरसन

"मैं एक आवाज़ सुन रहा हूँ, उसे तुम नहीं सुन सकते। वह मुझसे कह रही है—'ठहरो मत।' मुझे कोई हाथ उठाकर बुला रहा है; परन्तु तुम उस हाथ को नहीं देख सकते।"

—टिकेल

"यदि तुम किसी दूर की चीज़ को महत्त्वपूर्ण समझकर प्राप्त करो, परन्तु वह हाथ आने पर महत्त्वहीन सिद्ध हो, तो और आगे बढ़ो। प्रशंसा तो चेष्टा करने में है, न कि सिद्धि में।"

—आर० एम० मिलनोज

"क्या तू उस मनुष्य को देख सकता है जो अपना काम मेहनत के साथ कर रहा है। वह राजाओं के यहाँ सम्मान पावेगा।"

—सुलेमान

"यदि जीवन में बुद्धिमानी की कोई बात है तो वह एकाग्रता है

और यदि कोई खराब बात है तो वह अपनी शक्तियों को बखेर देना। बहुचित्तता कैसी भी हो इससे क्या। वही चीज अच्छी है जो हमारे खिलवाड़ और भ्रम की चीजों को दूर कर देती है और हमें हृदय से अपने काम करने के लिए भेजती है।" —इमरसन

"जो व्यक्ति जीवन में केवल एक बात ढूंढ़ता है, वह आशा कर सकता है कि जीवन समाप्त होने के पहले उसे वह प्राप्त हो जायगी।"
थोएन मेरेडिथ

"सबसे मूल्यवान अध्ययन तो वह है जिसमें हम पढ़ने में इतने निमग्न हो जायँ कि ऐसा लगे कि भोजन का समय दो घण्टे पहले ही आ गया।
—सिडनी स्मिथ

"एक सबसे दुर्बल प्राणी भी अपनी शक्तियों को एक केन्द्र पर लगाकर बहुत कुछ कर सकता है। इसके विपरीति सब से अधिक शक्तिशाली भी उन शक्तियों को अनेक स्थलों में बखेर कर असफल हो सकता है। लगातार गिरने वाली बूंदों से कठोर से कठोर चट्टान में भी छेद हो जाता है। पर तेजी से बहने वाली बाढ़ भयंकर शब्द करती हुई निकल जाती है और उसका कोई चिह्न शेष नहीं रह जाता।" —कारलायल

"बचपन में मैं सोचा करता था कि बादलों की गरज मृत्यु का कारण है। आज समझ में आ गया है कि मृत्यु का कारण बादलों की गरज नहीं बिजली है जो बादलों की रगड़ का परिणाम है। तब से मैंने गरजना कम कर दिया। —एक वक्ता

"जब मैं बच्चे से उम्र में कुछ ही बड़ा था, तब अपने को सब से अधिक बुद्धिमान समझता था। अब ज्यों-ज्यो सयाना होता जाता हूँ मुझे ऐसा लगता है कि मेरा ज्ञान एक बच्चे से बहुत अधिक नहीं है।" —पोप

"ध्यान एक उपयोगी, निरापद, मिश्चित लाभदायक और प्राप्त करने योग्य गुण है। मैं आपको सचमुच विश्वास दिलाता हूँ कि मेरे आविष्कारों

या कल्पनाओं ने मेरी ऐसी मदद कभी न की होती, यदि मुझमें साधारण; नम्र, दृढ़ रूप से ध्यान देने की आदत न होती। सदा पूर्ण मनुष्य बनने की कोशिश करनी चाहिए। चाहे सुलेखक बनकर देश की विचारधारा में क्रान्ति उत्पन्न कर दीजिए; चाहे अच्छे खिलाड़ी होकर प्रतिद्वन्द्वियों को हरा दीजिए, चाहे गायक बनकर संसार को मोह लीजिए। कुछ भी कीजिए, पर उसमें अपने शरीर और मन को लगा दीजिये। वह और आप एक हो जाइए। अपने उद्देश्य के साथ खिलवाड़ मत कीजिए।" —चार्ल्स डिकेन्स

"दौड़ना व्यर्थ है। मुख्य बात तो समय पर निकलना है।

—लाफ़ाने

"हमेशा हमारे भाग्य के धागों को कौन देख सकता है? क्षण भर के लिए हितकारी अवसर आता है; हम उसे खो देते हैं और महीनों तथा बरसों का नाश हो जाता है।"

'धीरे-धीरे' के रास्ते पर चलकर मनुष्य 'कभी नहीं' के मुकाम पर पहुँचता है।" —कारलायल

"आज का दिन घूमने में खो दो—कल भी वही बात होगी; और फिर अधिक सुस्ती आयेगी।" —शेक्सपियर

"धन उधार न दो न लो। ऋण देने से हाथ से धन भी जाता है और मित्र भी। ऋण मितव्ययिता का शत्रु है।" —शेक्सपियर

"धन चरित्र है। धन के विषय में कभी असावधानी न करो।"

—बुलवर लिटन

"धन जमीन में गाड़ रखने या भोग-विलास के लिये इकट्ठा न करो। उसकी आवश्यकता स्वतन्त्र जीवन-निर्वाह के लिये है।" —बर्न्स

"धन की केवल तीन गतियाँ हैं—दान, भोग और नाश। जो दान और भोग नहीं करता उसका धन नाश तो होगा ही।" —चाणक्य

"आपत्ति के सामने जो सिर झुका देता है, उससे कुछ नहीं हो सकता।

जो विजय पाने के लिए दृढ़-संकल्प है, सफलता उसके क़दम चूमेगी।"

—जान हण्टर

"इस संसार में मनुष्य का कोई कर्म ऐसा नहीं है जिसके साथ परिणामों का एक लम्बा क्रम न बँध जाता हो; और कोई मनुष्य ऐसा दूरदर्शी नहीं है जो इस क्रम को अन्त तक देख सके।"

—टामस

"सर्वत्र परमेश्वर की कृपा की दृष्टि होती है। सर्वत्र उसकी विविध उदारता का दस्तरख़्वान निस्संकोच बिछा है। अपने दासों के लज्जाजनक पापों से वह परदा नहीं उठता। न वह किसी को अपराध के कारण जीविका से वञ्चित करता है।"

"एक दिन प्रेयसी ने मुझे मिट्टी का एक ढेला दिया। मैं उसकी सुगन्ध से मस्त हो गया। मैंने ढेले से पूछा—'तू कस्तूरी है या अम्बर ?' उसने उत्तर दिया—'मैं मिट्टी का एक ढेलामात्र हूँ।' पर मैं कुछ दिन गुलाब के साथ रहा हूँ। मुझ पर उसी सत्संग का प्रभाव पड़ा है।"

"जो अपने खेत के अन्न को कच्चा ही खा जाता है वह फसल के समय केवल बालियों को इकट्ठा करेगा।"

"बुद्धिमानों के सामने चुप रहना शिष्टाचार का लक्षण है, तथापि अवसर आने पर बोलना ही उचित है। दो बातें मानसिक दुर्बलता प्रकट करती है—बोलने के अवसर पर चुप रहना और चुप रहने के अवसर पर बोलना।"

"जो सदाचरण के साथ जीवन व्यतीत करता है उसे सनातन सुख मिलता है; क्योंकि मृत्यु के बाद उसके सुकर्म उसके नाम को जीवित रक्खेंगे।"

—शेख सादी

यज्ञदत्त शर्मा द्वारा निराला प्रेस, आगरा, में मुद्रित।